इकाई 5 अभिलेख एवं *प्रशस्तियाँ* *

इकाई की रुपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 अभिलेख क्या है?

5.3 अभिलेखों के प्रकार

5.4 अशोक के अभिलेख

5.5 प्राचीन भारत के कुछ अन्य महत्वपूर्ण अभिलेख

5.5.1 *प्रयाग-प्रशस्ति*

5.5.2 जूनागढ़ अभिलेख

5.5.3 हाथीगुम्फा अभिलेख

5.5.4 हेलियोडोरस का अभिलेख

5.6 ऐतिहासिक परिवर्तन के चिह्न के रूप में अभिलेखों की भाषा में परिवर्तन

5.7 सारांश

5.8 शब्दावली

5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.10 संदर्भ ग्रंथ

5.11 शैक्षणिक वीडियो

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित के बारे में सीख एवं समझ सकेंगेः

- ऐतिहासिक कथनों, उद्घोषणाओं, लेखों के तौर पर प्राचीन भारतीय अभिलेखों का महत्व,
- किस प्रकार से ऐतिहासिक जागरूकता, चेतना एवं ज्ञान इस प्रकार के स्रोतों में अंतर्निहित हैं,
- अभिलेखों के प्रकार जो एक इतिहासकार को अतीत के पुनर्निर्माण के लिए सक्षम बनाते हैं तथा सहायता करते हैं, और
- प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के लिए कुछ अत्यधिक उपयोगिता वाले अभिलेख।

5.1 प्रस्तावना

अभिलेख इतिहास के पुनर्निर्माण, विशेषकर प्रारंभिक भारत के राजनीतिक इतिहास के पुनर्निर्माण, के लिए सर्वाधिक मूल्यवान स्रोत रहे हैं और साबित हुए हैं। परंतु हम इस इकाई में यह भी देखेंगे कि वे ऐतिहासिक महत्व के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिवेश में झांकने में हमारी मदद करते हैं। आर. सी. मजूमदार ने सही व्याख्या की है,

> ऐतिहासिक साक्ष्य के तौर पर ये साहित्यिक स्रोतों से अधिक विश्सनीय होते हैं क्योंकि अधिकतर साहित्यिक स्रोतों का काल अनिश्चित है और हज़ारों वर्षों में प्रतियों के रूप में उन्हें सुरक्षित रखने की प्रक्रिया के दौरान उनमें विशाल बदलाव अवश्य आए होंगे।

5.2 अभिलेख क्या है?

आसान शब्दों में कहें तो किसी ठोस सतह, उदाहरण के लिए, मुहरें, ताम्र-पत्र, मंदिर की दीवारें, धातुएँ, लकड़ी के पट्टों, कब्र के स्मारक-पत्थरों, खंभों, चट्टान की सतहों, ईंटों, मूर्तियों, आदि, पर कोई भी

* डॉ. अभिषेक आनंद, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय,, नई दिल्ली

लेखन अभिलेख कहलाता है। यह एक पाठ्य लेख होता है जो कि साहित्यिक शैली के साक्ष्य के काफ़ी करीब है और साथ ही साथ एक पुरातात्विक कलाकृति भी है जो उस समय की भौतिक संस्कृति का एक हिस्सा है। अभिलेख पूरे ऐतिहासिक समय में विश्वव्यापी रहे हैं और यह भारतीय उपमहाद्वीप के संदर्भ में भी सत्य है। अभिलेख सबसे महत्वपूर्ण, प्रमाणिक और विश्वसनीय स्रोतों में से एक हैं। रोमिला थापर (2013: 319) के अनुसारः

> प्रारंभिक अभिलेख ऐतिहासिक जानकारी के अंश होते हैं और यह ही वह तरीका है जिसमें उनका उपयोग किया गया है। परंतु अभिलेख विभिन्न तरीकों से व्यक्त की गई ऐतिहासिक चेतना के प्रति कुछ संवेदनशीलता भी धारण करते हैं।

उदाहरण के लिए, भूमि-अनुदान में संबंधित अभिलेखों में निहित जानकारी के विशाल भंडार का पिछले कुछ दशकों के दौरान बड़े पैमाने पर उपयोग किया गया है जिससे विद्वानों के बीच चर्चा हुई है कि क्या उत्तर-गुप्तकाल में सामंतवाद का आगमन हुआ था और क्या यह सामंती व्यवस्था की एक विशेषता थी।

अभिलेखों के अध्ययन को पुरालेखशास्त्र (epigraphy) के नाम से जाना जाता है और अभिलेखों में प्रयुक्त लिपि और उसकी बनावट का अध्ययन पुरालिपिशास्त्र (palaeography) कहलाता है।

अभिलेख साहित्यिक पाठ से भिन्न होता है जैसा कि प्रस्तावना में संक्षेप में बताया गया है। एक बार उत्कीर्ण होने के बाद इसमें साहित्यिक पाठ स्रोतों की तरह किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता और उनकी अपेक्षाकृत यह सरल, सीधी, ठोस और अधिक जानकारी प्रदान करता है, यद्यपि हम देखेंगे कि ऐसे स्थलों के उदाहरण भी मौजूद हैं जहाँ पहले से उत्कीर्ण अभिलेखों के स्थल या सतह पर ही परवर्ती अभिलेखों को उत्कीर्ण किया गया है। लेकिन अभिलेख में बदलाव नहीं होते हैं और हम उसे वर्तमान में उस रूप में देखते हैं – लगभग एक तैयार रूप में – जैसा कि उसे अतीत में उत्कीर्ण किया गया था। नर्म सामग्रियों, जैसे भोजपत्र/भुर्जपत्र (birch bark), ताड़पत्र (palm leaf), आदि पर लिखे गए ग्रंथों की अक्सर नकल उतारने की आवश्यकता होती थी क्योंकि पुरानी पांडुलिपियाँ समय के साथ भंगुर और नष्ट हो जाती हैं। नकल करने, व्यवस्थित रूप से मिलाने और पुनर्रचना के दौरान उनमें अंतर्वेशन (interpolations) हुए हैं और यहाँ तक कि परिवर्तन एवं जुड़ाव भी हुए हैं जबकि ऐसा अभिलेख के मामले में नहीं है। इस प्रकार, समकालीन लेखों के तौर पर उनका मूल्य संदेह से परे है। यद्यपि इनके सटीक काल का निर्धारण सदैव नहीं होता परंतु इनकी लिपि के अक्षरों की बनावट हमें इनका मोटे तौर पर काल-निर्धारण करने में सक्षम बनाती है। अब यह ऐतिहासिक रूप से जाना जाता है कि अशोक के बाद ब्राह्मी लिपि को अपनाया गया था और उसे परवर्ती शासकों द्वारा उपयोग में लाया गया था। इसके प्रत्येक अक्षरों में आने वाली सदियों में संशोधन हुए और इस प्रक्रिया के माध्यम से बंगाली, गुजराती, कन्नड़, तमिल, मलयालम, तेलुगु, आदि क्षेत्रीय/स्थानीय भाषाओं की भारतीय लिपियों का विकास हुआ। एक ऐतिहासिक घटना के रूप में एक-एक अक्षरों के संशोधन ने इन लिपियों में किसी भी विशिष्ट अभिलेख का मोटे तौर पर काल-निर्धारण करना लगभग संभव बना दिया है।

हम इस इकाई के बाद के एक भाग में अभिलेखों की भाषा में परिवर्तन की चर्चा करेंगे।

अभिलेख ***पुराणों*** एवं महाकाव्यों जैसे ग्रंथों में व्याप्त संदिग्धता से भी मुक्त हैं। इनमें हमें सटीक, निश्चित एवं स्पष्ट जानकारी प्राप्त होती है जैसे लेखक, उत्कीर्णक या जिसे अभिलेख के लिए नियुक्त, स्वीकृत, संरक्षण प्रदान करने वाले और प्रायोजित करने वाले व्यक्ति के द्वारा ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण माना गया है। कभी-कभी यह एक साहित्यिक स्रोत में दी गई जानकारी की पुष्टि एवं समर्थन कर सकता है। परंतु ऐसा न होने की स्थिति में कुछ अवसरों पर इसे जानकारी के समानांतर स्रोत के रूप में लिया जा सकता है जो कि ऐतिहासिक रूप से अधिक वैध एवं विश्वसनीय हो। साहित्यिक स्रोतों से अलग एक बिंदु यह भी है कि अभिलेख महाकाव्यों और *पुराणों*, जो एक दैवीय रूप से लिखित होने का दावा करते हैं, के विपरीत अपनी रचना के स्रोत के बारे में अधिक स्पष्ट होते हैं। एक और अंतर यह भी है कि अभिलेखों की पहुँच अधिक रही होगी क्योंकि उन्हें इन अभिलेखों के स्थलों पर साहित्यिक ग्रंथों तक पहुँच रखने वाले लोगों की तुलना में ज़्यादा लोगों द्वारा पढ़ा या सुना जा सकता था। सबसे पुराने अभिलेख हड़प्पा लिपि में हैं। आज भी न पढ़े जा सकने के कारण उन्हें हड़प्पा सभ्यता के अधिकांश स्थलों पर प्रचुर मात्रा में पाए गए मुहरों पर उकेरे गए 'संकेत चिह्न' कहा जा सकता है।

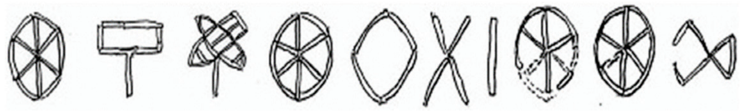

बाएँ: हड़प्पा सभ्यता के स्थल मोहनजोदड़ो (सिंध प्रांत, पाकिस्तान) से प्राप्त पशुओं के चित्रों और अपठित चिह्नों के साथ पशुपति (आद्य-शिव) मुहर, लगभग 2600-1900 बी सी ई

स्रोत: http://www.columbia.edu/itc/mealac/ pritchett/00routesdata/bce_500back/indusvalley/ protoshiva/ protoshiva.jpg

चित्र सौजन्य: विकिमीडिया कॉमन्स; https://commons.wikimedia.org/ wiki/File:Shiva_ Pashupati.jpg

दाएँ: धोलावीरा (कच्छ जिला, गुजरात) के उत्तरी द्वार पर हडप्पाई लिपि में अभिलेख का रेखाचित्र इसे धोलावीरा सूचना-पट्ट कहते हैं

श्रेय: सियाजकाक

स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स; https://en.wikipedia.org/wiki/File: The_% 27 Ten_ Indus_ Scripts %27_discovered_near_the_northern_gateway_of_the_Dholavira_citadel.jpg

5.3 अभिलेखों के प्रकार

अभिलेखों के अनेक प्रकार होते हैं:

1) शासनकर्ता राजाओं के राजकीय आदेश (*राज-शासन/धर्म-शासन/अभय-शासन*)

ये अभिलेख सत्ता और शक्ति का अधिकार रखने वालों के विचारों, मतों और घोषणाओं को व्यक्त, प्रतिबिंबित एवं सूचित करते हैं। ये आम तौर पर सार्वजनिक स्थलों पर स्थित होते थे, राज्य की प्रजा को संबोधित करते थे और उनसे संबद्ध होते थे। इनका प्रसार/फैलाव शासनारूढ़ राजा के शासन-क्षेत्र के संकेत के रूप में माना जाता है जैसा कि हम अशोक के अभिलेखों के संबंध में देखेंगे। इसी तरह, सौराष्ट्र पर रूद्रदामन का प्रभुत्व जूनागढ़ अभिलेख में स्पष्ट है।

एक अभिलिखित आदेश जनहित में जारी किए गए कानून की घोषणा भी हो सकता है। अभिलेखों की रचना आमतौर पर उन उत्कीर्णकों द्वारा की जाती थी जिन्हें लेखकों द्वारा निर्देशित किया जाता था जो सीधे शासक द्वारा उसकी राजकीय घोषणा के बारे में बोलकर लिखाया जाता था। उनके अभीष्ट श्रोताओं में राजदरबार स्वाभाविक रूप से शामिल होता होगा। ये मुख्य रूप से शासन से संबंधित उद्घोषणाएँ हैं लेकिन हमें इसी प्रक्रिया में इनके समकालीन समय के अन्य तथ्यों एवं पहलुओं की भी जानकारी मिलती है। ऐसे स्थलों का चयन किया जाता था जहाँ लोगों की बड़ी सभाएँ हो सकें। ये अभिलेख ऐसे ही स्थानों पर चट्टानों पर उत्कीर्ण किए जाते थे परंतु हम इन्हें अखंड स्तंभों (monolithic pillars) पर भी पाते हैं और अशोक के स्तंभों में उनकी आज्ञाओं के साथ उत्कृष्ट रूप में गढ़े गए शीर्ष (capital) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

हम अशोक के अभिलेखों का थोड़े विस्तार से अध्ययन अगले भाग में करेंगे। इन अभिलेखों की ऐतिहासिकता के संबंध में थापर (2013: 325) कहती हैं:

> इन अभिलेखों के बारे में उल्लेखनीय बात यह है कि सम्राट अशोक भारतीय जीवन और इतिहास के कई पहलुओं को छूते हैं जो उस वक्त विद्यमान थे और बाद की शताब्दियों में भी जारी रहे। अप्रत्यक्ष रूप से कहें तो ऐसा बहुत कुछ था जिसकी उत्पत्ति इन विचारों में हुई थी। एक से अधिक

अर्थों में अभिलेखों को प्रारंभिक भारत की ऐतिहासिक परंपराओं के परिचय के रूप में माना जा सकता है। इन अभिलेखों में वे विचार और कार्य संदर्भित हैं जो अतीत में प्रचलित थे और अब उनमें किस प्रकार का परिवर्तन आया और क्यों। लुंबिनी में बुद्ध के जन्म-स्थान की पहचान करने वाला अभिलेख एक अति महत्वपूर्ण ऐतिहासिक पुरालेख है। अशोक के अभिलेखों में प्रमुख/वृहद् शिलालेख (Major Rock Edicts) एवं स्तंभ अभिलेख सबसे विस्तृत रूप से पाए गए हैं जो कि वास्तव में एक *चक्कवत्ती* के कथन हैं। वह एक सार्वभौमिक सम्राट है जो सामाजिक नैतिकता या *धम्म* के नियमों पर प्रवचन देता है जिनका वह अपनी प्रजा से पालन कराना चाहता है ... अभिलेख आंशिक रूप से आत्म-कथात्मक हैं जो उसके विचारों और गतिविधियों को व्यक्त करते हैं और समकालीन मामलों के आलोक में अतीत में किए गए राजकीय कार्यों के बारे में जागरूकता और उसके कथन की भविष्य में प्रासंगिकता को दर्शाते हैं। यह उसके अभिलेखों की ऐतिहासिक चेतना को एक आस्वादन प्रदान करता है।

2) *प्रशस्तियाँ/विजय-शासन/प्रतिष्ठा-शासन*/कभी-कभी *पूर्व* के नाम से संबोधित

इस प्रकार के अभिलेख राजाओं के विवरण और स्तुति या महिमामंडन से संबंधित हैं। ये अभिलेख उनके संरक्षकों और संरक्षकों की उपलब्धियों की सराहना करते हैं। इसके अतिरिक्त, जैसा हमें थापर (2013: 341) जानकारी देती हैं:

> *प्रशस्तियाँ* वंश की उत्पत्ति का उल्लेख करती हैं जिसमें देवताओं और प्राचीन ऋषियों के साथ-साथ छोटी लघु वंशावलियाँ शामिल होती हैं जिन्हें संभवतः राज दरबारों में रखे गए आलेखों से निर्मित किया गया है .... राज्योंऔर छोटे मुखिया रूपी राजाओं द्वारा शासित क्षेत्रों पर विजय को सूचीबद्ध किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि छोटे मुखिया रूपी राजाओं के राज्य राजनीतिक रूप से उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण थे जितना कि उन्हें आधुनिक इतिहासकारों द्वारा स्वीकार किया जाता है।

क्षहरातों, शक-क्षत्रपों और कुषाणों के अभिलेख दो या तीन पीढ़ियों से भारतीय नामों को अपनाते हैं। ये अभिलेख उन्हें सामाजिक एवं धार्मिक कल्याण में संलग्न दर्शाते हैं। यदि इलाहाबाद स्तंभ लेख की खोज नहीं की गई होती तो शक्तिशाली गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त अज्ञात और भारतीय इतिहास के पृष्ठों से गायब रहता।

अधिकांश गुप्त अभिलेखों में कालक्रम का वर्णन मिलता है। यह बाद के राजवंशों द्वारा अपनाई गई प्रथा बन गई। गुप्त अभिलेख अपने पूर्ववर्तियों की गतिविधियों का विवरण भी प्रस्तुत करते हैं। अपने ऐहोल (कर्नाटक) शिलालेख में चालुक्य सम्राट पुलकेशिन द्वितीय अपनी वंशावली देता है और अपनी उपलब्धियों को सूचीबद्ध करता है। इसी प्रकार राजा भोज की ग्वालियर *प्रशस्ति* में उनके पूर्ववर्तियों एवं उनकी उपलब्धियों का पूरा विवरण मिलता है और साम्राज्यवादी प्रतिहारों पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। देवपारा (ढाका डिविज़न, दक्षिणी-मध्य बांग्लादेश) से सेन वंश के शासक विजयसेन की *प्रशस्ति* एक चट्टान पर उत्कीर्ण प्राप्त हुई है। मजूमदार (1996: 54) हमें सूचित करते हैं:

> इसका मात्र उद्देश्य विजयसेन द्वारा एक मंदिर के निर्माण को दर्ज करना है। लेकिन यह लगभग पूरी तरह से इस महान् राजा की प्रशंसात्मक स्तुति को समर्पित है जिसमें उसकी विजयों एवं उपलब्धियों का वृत्तांत दर्शाया गया है ...

प्रशस्तियों की एक अन्य श्रेणी में राजाओं या उनके अधीनस्थों द्वारा एक बाँध, जलाशय, तालाब, कुआँ, भोजनगृह, विश्रामगृह, आदि या अन्य धर्मार्थ और पुण्यात्मक कार्यों के निर्माण की जानकारी मिलती है। रूद्रदामन का जूनागढ़ (गिरनार) शिलालेख, जिसके बारे में हम बाद में इस इकाई में विस्तार से अध्ययन करेंगे, इस तरह की *प्रशस्तियों* का एक आद्यरूप (prototype) है जो सुदर्शन झील के निर्माण और इसकी नियमित रूप से की गई मरम्मतों को दर्ज करता है।

इनके अलावा हम अभिलेखों के अन्य विविध प्रकार भी पाते हैं जैसे नाम का उत्कीर्णन, छोटे उत्कीर्ण लेख, धार्मिक सूत्र/मंत्र और मुहरों पर लेखन, आदि।

3) अभिलेखों में आमजनों की भी आवाज़ हो सकती है। इस प्रकार के अभिलेखों की सूची निम्नलिखित है:

क) *दान-शासन* अभिलेख

धार्मिक प्रतिष्ठानों का उपहार या दान (votive inscriptions) दर्ज करने या पूजा के लिए मूर्तियों की प्रतिस्थापना और अभिषेक, उससे संबंधित विशिष्ट घटनाएँ, आदि को दर्ज करते अभिलेख

(*दान-शासन*)। गृहस्थ, भिक्षु एवं भिक्षुणियाँ अनेक प्रकार के कारणों और उद्देश्यों, जैसे सामाजिक मान्यता एवं प्रशंसा, उनके दान और धर्मपरायणता को अविस्मरणीय बनाने के लिए बौद्ध *संघ*, संघाराम (*मठ*) या *स्तूप* को दिए गए उनके उपहारों एवं दानों को दर्ज करना चाहते थे। ये अभिलेख उन लोगों के किए थे जो बौद्ध स्थलों पर पूजा के लिए या अंजलि प्रदान करने के लिए जाते थे। यह तार्किक रूप से कल्पना की जा सकती है कि इन धार्मिक कृत्यों को दर्ज करने के पीछे एक अन्य कारक आगंतुकों को उपहार देने एवं दान करने के लिए प्रोत्साहित एवं प्रेरित करना अवश्य रहा होगा और जो ऐसा कर चुके हैं उनको पुनः ऐसा करने के लिए प्रेरित करना रहा होगा। ये अभिलेख अनेक *स्तूप* स्थलों पर *स्तूप* की बाहरी सतहों पर उत्कीर्ण पाए जाते है जहाँ उन्हें आसानी एवं सुविधाजनक रूप से सभी लोगों के द्वारा पढ़ा जा सके। कभी-कभी ये *वेदिका* (railing) पर भी उत्कीर्ण होते हैं। अधिकतर उदाहरणों में अभिलेख *स्तूप* के किसी अंश के निर्माण में योगदान को दर्ज करता है या फिर उस विशिष्ट भाग को जहाँ पर अभिलेख उत्कीर्ण है। ये अभिलेख साथ-साथ तत्कालीन शासक और उसके शासन, प्रशासन, नीतियों, उपलब्धियों, आदि को भी संदर्भित करते हैं। फिर भी यह तर्क दिया जाता है कि ये अभिलेख आधिकारिक आदेशों की तरह बहुत सावधानी से नहीं लिखे जाते थे इसलिए हमेशा ऐतिहासिक रूप से सटीक एवं अचूक नहीं हो सकते।

ख) ताम्रपत्र अभिलेख (*ताम्र-शासन*)

पहली सहस्राब्दि सी ई की आखिरी शताब्दियों में राजकीय भूमि-अनुदानों के रूप में कई हज़ार ताम्रपत्र अभिलेख प्राप्त हुए हैं। ये दान अभिलेख हैं जो मंदिरों, ब्राह्मणों, योग्य व्यक्तियों और अन्य लाभार्थियों को प्रदत्त भूमि एवं अन्य वस्तुओं के दान को दर्ज करते हैं। पूर्व मध्यकाल में दक्कन और दक्षिण भारत में सैंकड़ों की संख्या में मंदिर, ध्वज स्तंभ, आदि के निर्माण का वर्णन करने वाले दान शिलालेख पाए गए हैं।

ये अधिकतर तांबे के हाथ के बराबर के आकार वाले दो या दो से अधिक पत्रों/पट्टों/पत्तलों/पतरों पर अनुदान का विवरण अंकित करते हैं। इन पत्रों को कागज़ों के ढेर की तरह एक साथ जोड़ कर रखने के लिए एक छेद में छल्ला लगाकर रखा जाता था। यह विचार सनौबर (birch) के पेड़ की छालों और ताड़पत्र की पांडुलिपियों का अनुकरण करता प्रतीत होता है जिसमें पत्तियों को धागों से बाँधकर रखा जाता था। ये ताम्रपत्र अभिलेख भूमि पर अधिकारों एवं दायित्वों/कर्तव्यों के संबंध में सूचियाँ हैं। यद्यपि ये खरीद-बिक्री (*क्रय-शासन*), मंदिरों, देवताओं, ब्राह्मण लाभार्थियों, आदि को भूमि के उपहार/दान पर प्रकाश डालते हैं, ये दानदाताओं और प्राप्तकर्ताओं की वंशावली के साथ-साथ अन्य महत्वपूर्ण ऐतिहासिक जानकारी के उपयोगी विवरण भी प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, जैसा कि हमें मजूमदार (1996: 54) बताते हैं:

> ये अनुदान अभिलेख भूमि की सीमाओं को परिभाषित करते हैं और अनुदान की वस्तु एवं शर्तों को निर्दिष्ट करते हैं, साथ ही अन्य दिलचस्प विवरण भी देते हैं जैसे कि भूमि की कीमत, इसके माप का तरीका, भविष्य में राजाओं को अनुदान को ज़ब्त न करने के लिए आग्रह और अनुदान का उल्लंघन करने वाले लोगों के लिए शास्त्रों में उल्लिखित मृत्यु के पश्चात् बड़े दंड की धमकी देने के लिए *शास्त्रों* से उद्धरण देते हैं ..

इस क्षमता में ताम्रपत्र अभिलेखों ने एक न्यायिक या कानूनी कार्य भी किया। भूमि के एक टुकड़े के स्वामित्व को लेकर विवाद के मामलों और अवसरों पर इन *ताम्र-शासनों* को निर्णय लेने का अधिकार निश्चित करने से पहले प्रस्तुत किया जाता था।

इसके अतिरिक्त, ये राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक इतिहास के अच्छे स्रोत बन जाते हैं। इनसे हमें उच्च ख्याति एवं स्थिति के विद्वान ब्राह्मणों को *अग्रहार* नामक भूमि-अनुदानों के बारे में जानकारी मिलती है जिन्हें सभी करों से मुक्त माना जाता था।

ये ताम्रपत्र अभिलेख एक इतिहासकार के लिए मूल्यवान साधन हैं क्योंकि ये हमें समकालीन घटनाओं और आम लोगों के बारे में जानकारी देते हैं। अनेक अभिलेखों में वंशावली, वंश से संबंधित जानकारियाँ और कभी-कभी उन राजाओं के नाम भी हैं जो साहित्यिक ग्रंथों में सूचीबद्ध वंशावलियों में छूट गए हैं। पल्लव, चालुक्य और चोल काल के भूमि-अनुदान अभिलेख हमें समकालीन राजनीतिक संरचनाओं, कृषि विवरणों और राजस्व प्रणालियों के बारे में सूचित करते हैं।

ग) वीर-स्तम्भ

स्मारक शिलाओं/वीर-स्तम्भों (hero-stones; *विजय-शासन*), समाधि-स्तम्भों (gravestones; *वीरगल*), यज्ञ/बलि-स्तम्भों (sacrificial stones; *युप-शासन*), आदि पर नायक, शहीद, *सती*, आदि की स्मृति में निर्मित स्मारकों पर उत्कीर्ण अभिलेख।

थापर (2013: 340) इनका वर्णन इस प्रकार करती हैं:

> एक संपूर्ण रूप से अलग अभिलेखों की श्रेणी है जो पहली सहस्राब्दि ए डी के मध्य में संक्षिप्त दस्तावेज़ों के रूप में शुरू होती है लेकिन बाद की शताब्दियों में अधिक नियमित एवं विस्तृत होती जाती है। ये हैं नायक एवं किसी स्त्री के *सती* होने की स्मृति में लिखे गए अभिलेख। एक स्मृति-स्मारक के रूप में सीधे पत्थर का खड़ा करना महापाषाणीय संस्कृति के स्मारक-स्तंभ में देखा जा सकता है जिसे बाद में मृत लोगों के लिए बौद्ध स्मारकों ने अपनाया। अधिकतर घोड़े पर आसीन नायक का सामान्य रूप से चित्रण एक नयी विशेषता है जो जोड़ी गई है और धीरे-धीरे एक संक्षिप्त अभिलेख जोड़ा गया। *सती* को प्रतीकों द्वारा स्मरित किया गया है। इसमें स्थान एवं तिथि का विवरण तो कम से कम होता ही है। धीरे-धीरे वीर-स्तम्भ (hero-stone) पर कुछ प्रतिमायुक्त भागों को तराशा जाने लगा जिसमें युद्ध या आमतौर पर मवेशियों पर आक्रमण और नायकों को अपसराओं द्वारा स्वर्ग की ओर ले जाता दिखाया गया है। शीर्ष पर स्थित सूर्य और चंद्रमा निश्चित रूप से अनंत काल का प्रतिनिधित्व करते है। इसके साथ नायक की पहचान, तिथि और घटना को दर्ज करने वाले विस्तृत अभिलेख होते थे। ये संस्कृत में संक्षिप्त उल्लेख से घटना और व्यक्ति के संबंध में क्षेत्रीय भाषाओं में विस्तृत वृत्तांत बन गए। ऐसे वीर-स्तम्भ पूरे उपमहाद्वीप में पाए जाते हैं, विशेषकर उन सीमावर्ती क्षेत्रों में जिन पर राजनीतिक नियंत्रण बदलता रहता था।

घ) पुरालेख

अभिलेखों के कुछ और भी उपयोग एवं कार्य हो सकते हैं। वे उन मूर्तियों का तिथि-निर्धारण करने में सहायता करते हैं जिन पर वे अंकित हैं (*प्रतिमा-शासन*) और उनके बारे में अधिक जानकारी प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, कनिष्क की उल्लेखनीय, भव्य एवं प्रभावशाली लेकिन बिना सिर वाली मूर्ति की पहचान उनके नाम के मूर्ति के निचले हिस्से पर अंकित होने के कारण की जा सकी है।

कनिष्क की सीधी खड़ी शीर्ष-रहित मूर्ति, मथुरा संग्रहालय

श्रेय: बिस्वरूप गांगुली

स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स; https://commons.wikimedia.org/wiki/File: Kanishka_enhanced.jpg

'अशोक अपनी रानियों के साथ'; पहली-तीसरी शताब्दी सी ई; सन्नति-कनगनहल्ली *स्तूप* (जिला गुलबर्गा, कर्नाटक) जिसमें अशोक का नाम अंकित है

श्रेयः विकिमैपिया; उपिंदर सिंह, *ए हिस्ट्री ऑफ़ एंशिएंट एण्ड अर्ली मिडिवल इंडियाः फ्रॉम द स्टोन एज टू द ट्वेल्थ सेंचुरी*, नई दिल्ली, पियर्सन, 2008, पृ. 333

स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स; https://commons. wikimedia.org/wiki/File:Kanaganahalli_ Asoka_with_inscription.jpg

दुर्जनपुरा/दुर्जनपुर (विदिशा के निकट, मध्य प्रदेश) से प्राप्त तीन जैन मूर्तियों का गुप्त राजा रामगुप्त के समय में इन मूर्तियों के अभिलेखों के कारण सुरक्षित रूप से तिथि-निर्धारण किया जा सकता है और इसलिए उनकी कलात्मक योग्यता व महत्व के अतिरिक्त वे गुप्त इतिहास के महत्वपूर्ण दस्तावेज़ भी है। खैरीगढ़ (उत्तर प्रदेश) से प्राप्त गहरे पीले बलुआ पत्थर की असामान्य, विशाल आकार की घोड़े की मूर्ति को *अश्वमेध* यज्ञ में बलि के लिए गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त द्वारा इस्तेमाल किए गए घोड़े के तौर पर दर्शाया गया है जिसके बारे में हमें उस पर अंकित क्षतिग्रस्त/धूमिल अभिलेख से जानकारी प्राप्त होती है। इस जानकारी की पुष्टि इस तथ्य से भी जा सकती है कि उसके सिक्कों पर भी *अश्वमेध* अनुष्ठान को दर्शाया गया है।

अभिलेखों को वर्गीकृत करने का एक और तरीका उन्हें दो श्रेणियों में विभाजित करना हैः

1) **आधिकारिक/शासकीय अभिलेख** – इनमें प्रशस्तियाँ एवं राज्य के द्वारा पंजीकृत ताम्रपत्र अभिलेख शामिल हैं।

2) **व्यक्तिगत अभिलेख** – इनमें किसी व्यक्ति, परिवार, संप्रदाय या समुदाय के द्वारा अनुदान से संबंधित दस्तावेज़ शामिल होते हैं।

5.4 अशोक के अभिलेख

1837 तक अशोक एक प्रसिद्ध शासक नहीं था जब ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा नियुक्त बंगाल में एक प्रशासनिक अधिकारी जेम्स प्रिंसेप का सामना एक ब्राह्मी शिलालेख से हुआ जिसमें 'देवानांपिय पियदस्सी' (देवताओं का प्रिय) नामक एक राजा का उल्लेख था। इसकी तुलना श्रीलंकाई ग्रंथ *महावंश* से की गई और यह निष्कर्ष निकाला गया कि शिलालेख में उल्लिखित राजा वास्तव में अशोक था।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

DE VA NAM PI YA SA PI YA DA SI NO A SO KA RA JA

दे वा नाम पि य स पि य द सी नो अ सो क रा जा 'देवानामपियस पियदसिनो (देवताओं का प्रिय) अशोकराजा', गुज्जरा (दतिया जिला, मध्य प्रदेश) लघु शिलालेख

श्रेयः Ashok.tapase

स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स; https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Gujarra_Devanampiyasa_Piyadasino_Asokaraja.jpg

यह इस महान् सम्राट के द्वारा शिलाओं एवं स्तंभों पर उत्कीर्ण नक्काशी के रूप में अद्भुत ऐतिहासिक खोजों की श्रृंखला में प्रथम था।

मजूमदार (1996: 53) बताते हैं:

> जब अशोक के अभिलेख पहली बार अठारहवीं शताब्दी के अंत में सामने आए तो उनकी लिपि चौदहवीं शताब्दी की तरह सभी के लिए एक पहेली थी जब सुल्तान फ़िरोज़ तुग़लक अशोक के शिलालेख वाले एक स्तंभ को दिल्ली लेकर आया और इसे भारतीय पंडितों द्वारा पढ़वाने का व्यर्थ प्रयास किया ... यह कार्य 1837 में पूर्ण हुआ और अगले पचास वर्षों के दौरान भारतीय पुरालेख को एक मज़बूत आधार मिला। कई विद्वानों के समर्पित एवं धैर्यवान कार्य से विभिन्न प्रकार की भारतीय लिपियों का गहन अध्ययन, विश्लेषण एवं वर्गीकरण किया गया और भारतीय पुरालेख शास्त्र के लिए एक वैज्ञानिक आधार स्थापित किया गया जिसने उन्हें विभिन्न कालों एवं स्थानों से संबंध स्थापित करना संभव बनाया। ऐतिहासिक लेखों के रूप में उनके आंतरिक मूल्य के अतिरिक्त अशोक के अभिलेख इस प्रकार भारत में अभिलेखीय और पुरालेखीय अध्ययन के शुरुआती बिंदु के रूप में अत्यधिक मूल्यवान साबित हुए हैं।

तीसरी शताब्दी बी सी ई के अशोक के अभिलेख उसके शासन के विभिन्न शासकीय वर्षों में उत्कीर्ण किए गए हैं जो हमें ज्ञात सबसे पुराने पढ़े गए अभिलेख हैं। ज़्यादातर, उसके अपने शब्दों में, वे राजकीय आदेश थे जो कुलीनों/अभिजात्यों, अधिकारियों या साधारण जनता को सामाजिक, सांस्कृतिक और प्रशासनिक मामलों में संबोधित करते थे। जैसा कि मजूमदार (1992: 53) दिलचस्प टिप्पणी करते हैं:

> ये बाईस शताब्दियों में एक महान् शासक के जीवन और व्यक्तित्व को एक अनोखी जीवंतता के साथ व्यक्त करते हैं ... उस आध्यात्मिक महानता को निष्ठापूर्वक दर्शाते हैं जो भारतीय सभ्यता की महिमा का निर्माण करती है ... अशोक के अभिलेख अपने आप में ही एक वर्ग हैं और ये उस काल के इतिहास के बारे में हमारे ज्ञान में बड़े पैमाने पर वृद्धि करते हैं और उस मनोभाव को समझाते हैं जिसने राजसिंहासन पर बैठने वाले महानतम व्यक्तियों में से एक को जीवंत किया। कोई अन्य शिलालेख रुचि या ऐतिहासिक महत्व की दृष्टि से उसके आसपास भी नहीं हैं।

ये तीन भाषाओं – प्राकृत, यूनानी और आर्माइक – और चार लिपियों – ब्राह्मी[1] , खरोष्ठी[2] , यूनानी और आर्माइक – में लिखे गए थे। अशोक ने वर्तमान अफ़ग़ानिस्तान में स्थित अपने साम्राज्य के कुछ हिस्सों में आर्माइक और यूनानी लिपियों का इस्तेमाल किया। तथ्य की बात है कि यह वह क्षेत्र था जिसे सेल्यूकस निकेटर ने मौर्यों को सौंप दिया था। गांधार[3] क्षेत्र में खरोष्ठी लिपि का प्रयोग होता था। ज़्यादातर अशोक के अभिलेख प्राकृत भाषा में लिखे गए थे जो उसके विशाल साम्राज्य में फैले हुए थे जिसका विस्तार पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में पश्चिम में सिंधु नदी से लेकर दक्षिण में मैसूर के पठार तक फैला हुआ था।

---

[1] बाएँ से दाएँ की ओर लिखित, उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र को छोड़कर अशोक के सभी अभिलेख उत्तर में कलसी/खालसी (उत्तराखण्ड) से लेकर दक्षिण में इसी लिपि में उत्कीर्ण हैं। हमें ज्ञात सबसे पुरानी लिपि के रूप में एक धीमी और निरंतर प्रक्रिया में आज प्रचलित सभी भारतीय भाषाएँ इससे विकसित हुई हैं।

[2] आर्माइक से प्रभावित, यह दाएँ से बाएँ की ओर लिखी जाती थी। इसका प्रयोग अशोक के शासन के पश्चात् भारत के उत्तर-पश्चिम भाग में कई शताब्दियों तक होता रहा था लेकिन बाद में यह बिना कोई चिन्ह छोड़े गायब हो गई।

[3] प्राचीन भारतीय उपमहाद्वीप में यह क्षेत्र आज का उत्तर-पश्चिमी पाकिस्तान एवं पूर्वी अफ़ग़ानिस्तान है। इसमें काबुल, पेशावर स्वात एवं तक्षशिला शामिल हैं।

अशोक के अभिलेखों में 14 वृहद शिलालेख, सात स्तंभ लेख और कुछ लघु शिलालेख हैं। उसके अभिलेख (*धम्म-लिपि*) मुख्यतः उसकी ***धम्म*** नीति का प्रचार करने के लिए उत्कीर्ण किए गए उसके अभिलेखों के स्थल हमें उसके साम्राज के विशाल विस्तार का अनुमान लगाने में सहायक हैं।

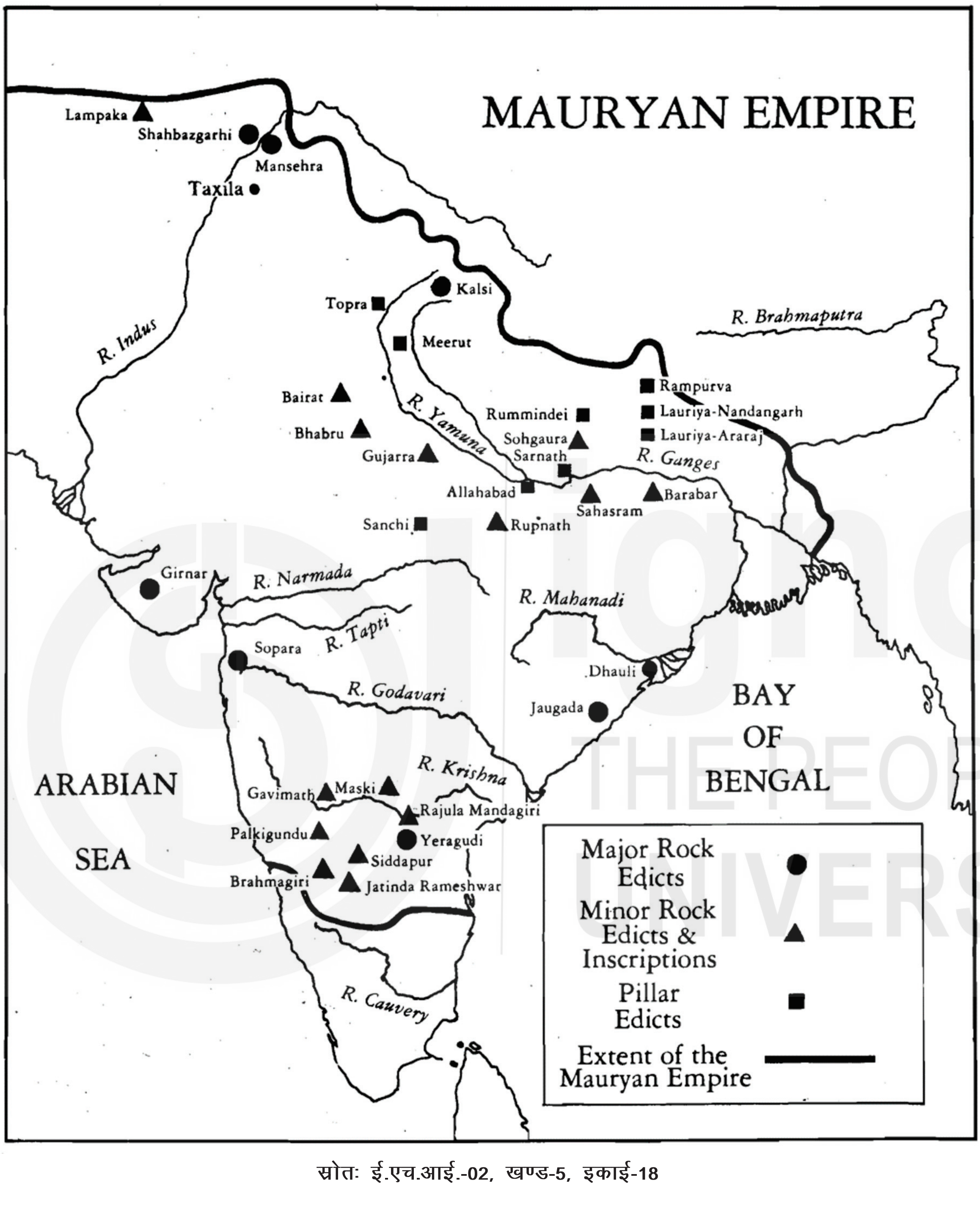

स्रोतः ई.एच.आई.-02, खण्ड-5, इकाई-18

उसके वृहद शिलालेख निम्न स्थानों पर पाए गए हैं:

1) पाकिस्तान में शाहबाज़गढ़ी और मानसेहरा
2) कलसी/खालसी (देहरादून जिला, उत्तराखण्ड)
3) काठियावाड़ (गुजरात) में जूनागढ़ के निकट गिरनार
4) सोपारा (महाराष्ट्र)
5) भुवनेश्वर (ओडिशा) के निकट धौली
6) जौगड़ (Jaugad)/जुगड़ (Jugarh) (गंजाम जिला, ओडिशा)

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

धौली में अशोक के वृहद शिलालेख के स्थल पर पत्थर से तराशा हुआ हाथी
भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण स्मारक क्रमांक एन.ओ.आर.-59
श्रेयः कुमार शक्ति
स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स; https://commons.wikimedia.org/wiki/File: Elephant-sculpture-dhauli.JPG

उसके स्तंभ लेख स्थित हैं:

1) दिल्ली (मूल रूप में अम्बाला के निकट टोपरा {हरियाणा} एवं मेरठ {उत्तर प्रदेश} में स्थापित)
2) उत्तर प्रदेश में कौशांबी,
3) लौरिया अरेराज/लैरिया अराराज (पूर्वी चम्पारण जिला, बिहार)
4) लौरिया नंदनगढ/लौरिया नवन्दगढ़ (पश्चिमी चम्पारण जिला, बिहार)
5) रामपुरवा (पश्चिमी चम्पारण जिला, बिहार)
6) साँची (भोपाल के निकट रायसेन जिला, मध्य प्रदेश)
7) वाराणसी/बनारस के निकट सारनाथ
8) नेपाल में लुंबिनी या रुम्मिनदेई

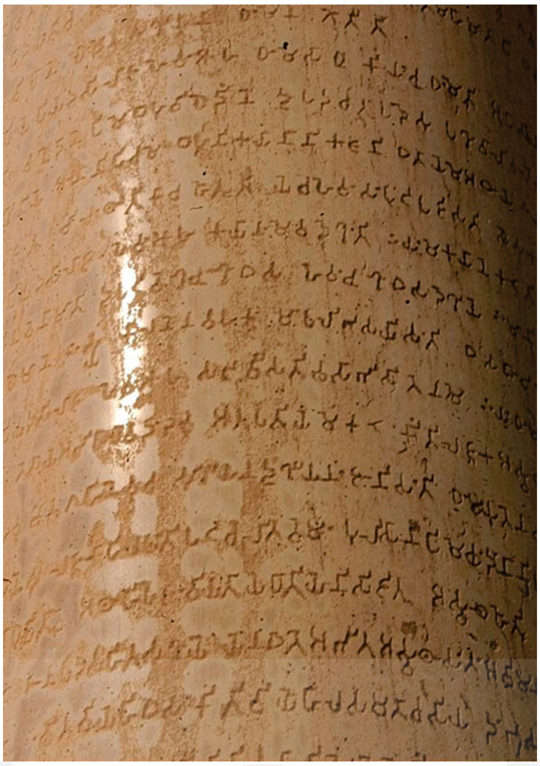

अशोक का लौरिया अरेराज अभिलेख
श्रेयः सचिन कुमार तिवारी
स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स; https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Ashoka_Lauriya_Areraj_inscription.jpg

अशोक के लौरिया नन्दनगढ़ स्तंभ के ऊपरी भाग में सिंह शीर्ष
श्रेयः ब्रिटिश लाइब्रेरी (1865 का चित्र)
स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स; https://en.wikipedia.org/wiki/File:Lauria_Nandangarh_lion.jpg

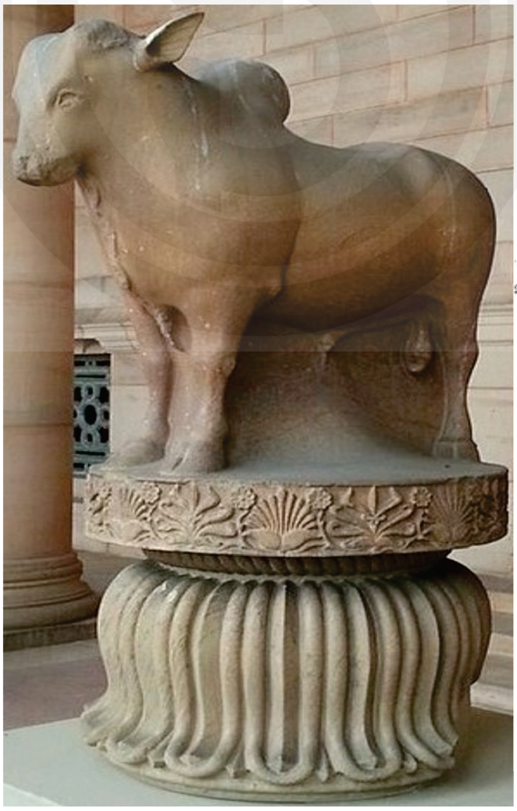

रामपुरवा अशोक स्तंभ का मूल वृषभ शीर्ष; वर्तमान में राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली में स्थित
श्रेयः एम. अमिताव घोष
स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स; https://en.wikipedia.org/wiki/File: Rampurva_bull_in_Presidential_Palace_high_closeup. jpg

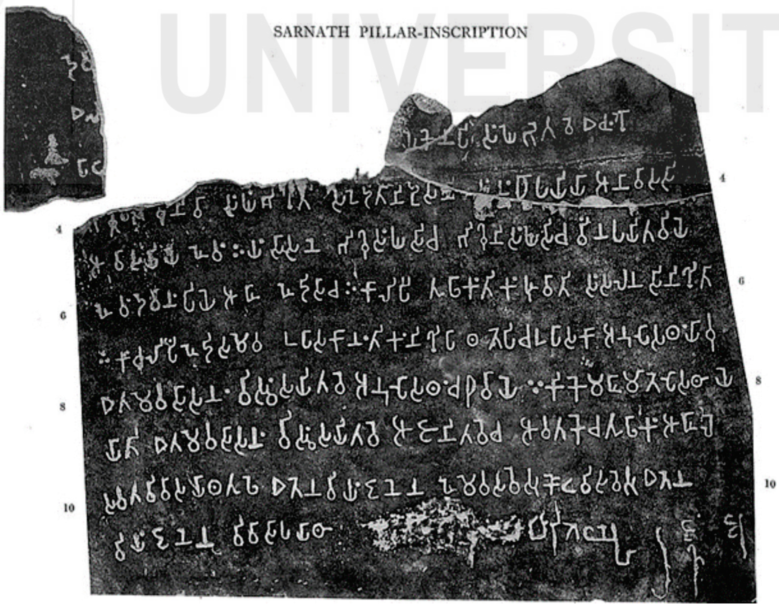

सारनाथ स्तंभ-अभिलेख
स्रोतः यूजीन हल्ट्ज़स्च, कॉर्पस इन्सक्रिप्शनम सारनाथ स्तम्भ अभिलेख इंडिकारम, संस्करण 1: इंसक्रिप्शंस ऑफ़ अशोक, 1925, क्लेरेंडॉन प्रेस, ऑक्सफ़ोर्ड, पृ. 191
वेब स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स; https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Sarnath_pillar_inscription.jpg

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

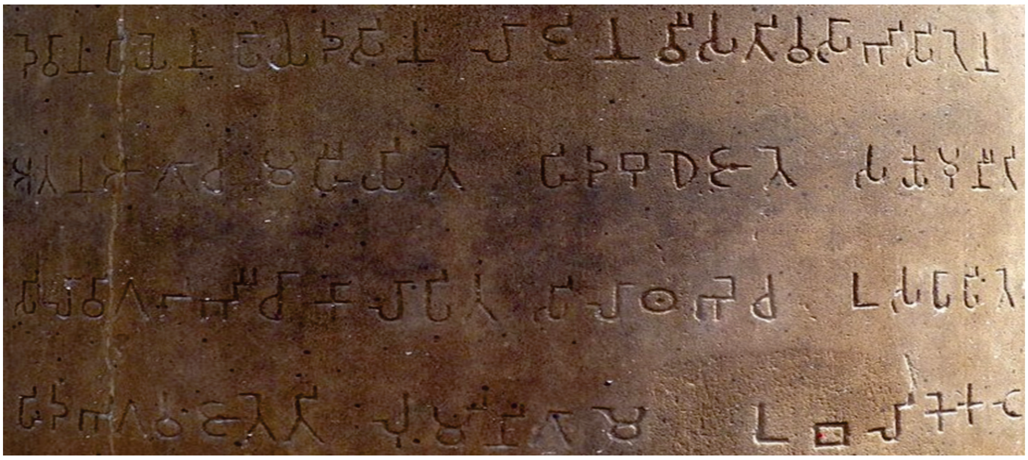

अशोक का लुंबिनी स्तंभ लेख (नेपाल), ब्राह्मी लिपि
श्रेयः Photo Dharma
स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स; https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Lumbini_-_Pillar_Edict_in_Brahmi_Script,_Lumbini_(9241396121).jpg

जैसा कि सरसरी तौर पर पहले कहा गया था, लुंबिनी स्तंभ लेख एक स्मारक अभिलेख है जो बुद्ध के जन्मस्थान पर अशोक की यात्रा को अंकित करता है। इसका एक अंश इस प्रकार हैः

जब राजा देवानामप्रिय प्रियदर्शिन के राज्याभिषेक के बीस वर्ष हो गए वह स्वयं आए और (इस स्थान पर) पूजा की क्योंकि बुद्ध शाक्यमुनि का जन्म यहाँ हुआ था। उन्होंने यहाँ एक घोड़े की मूर्ति बनवाई एवं एक शिलास्तंभ स्थापित करवाया (यह दिखाने के लिए) कि धन्य (बुद्ध) का जन्म यहाँ हुआ था। (उन्होंने) लुंम्बिनी के गांव को करों से मुक्त कर दिया और केवल (उत्पादन का) आठवाँ भाग ही देय हो गया।

स्रोतः यूजीन हल्ट्ज़्स्च, *कॉर्पस इन्सक्रिप्शनम इंडिकारम*, संस्करण 1ः *इंसक्रिप्शंस ऑफ़ अशोक*, 1925, क्लेरेंडॉन प्रेस, ऑक्सफ़ोर्ड, पृ. 164-165

कर्नाटक में कई स्थलों पर अशोक के लघु शिलालेख बड़ी मात्रा में पाए गए हैं, जैसेः 1) ब्रह्मगिरी; 2) सिद्यापुर/सिद्यापुरा (ब्रह्मगिरि के निकट); 3) जतिंग-रामेश्वरा/जतिंग-रामेश्वर; और 4) मस्की (रायचूर/रायचुर जिला)।

अन्य लघु शिलालेख इन स्थलों पर पाए गए हैंः 1) रूपनाथ (जबलपुर के निकट, मध्य प्रदेश); 2) सहसराम (शाहाबाद जिला, बिहार); और 3) बैराव (जयपुर के निकट, राजस्थान)।

उसके विस्तृत अधिकार क्षेत्र की सीमा के बारे में हमें उचित जानकारी देने के अलावा ये शिलालेख महत्वपूर्ण व्यापार मार्गों पर स्थित थे। इनमें से कुछ परिधीय क्षेत्रों की सीमा से लगे हुए थे जो सड़क मार्ग और नदी यातायात को जोड़ते थे। कई इतिहासकार और उनके लेखन यह सुझाते हैं कि इन रणनीतिक या सामरिक स्थानों पर, विशेष रूप में प्रायद्वीप को नियंत्रित करने के लिए, इन शाही आदेशों को स्थापित करने के पीछे प्राथमिक प्रेरणा एवं कारक कच्चे माल तक पहुँच और उपलब्धता और उसकी प्राप्ति थी। हालांकि यह पूर्ण आश्वासन के साथ नहीं कहा जा सकता है कि जिन क्षेत्रों में उसके शिलालेख नहीं पाए गए हैं उनका शासन उसी प्रकार चलता था जिस प्रकार वहाँ जहाँ वे प्राप्त हुए हैं।

उसकी राजकीय घोषणाएँ साम्राज्य के सीमावर्ती इलाकों में लोगों पर भी टिप्पणी करती हैं जो उसके साम्राज्य की रूपरेखा की और दृढ़ता से पुष्टि करती हैं। वे हमें सूचित करती हैं कि सेल्यूकस राजा एंटिओकस द्वितीय का क्षेत्र उत्तर-पश्चिम में उसके साम्राज्य से परे था, दक्षिण में चोलों, चेरों (उसके शिलालेखों में प्रयुक्त शब्द केरलपुत्र है), पांड्यों, सत्यपुत्रों और श्रीलंका का भी उसके साम्राज्य से बाहर राजवंशों एवं स्थानों के रूप में उल्लेख है। साम्राज्य के भीतर विविध मूल एवं संस्कृतियों के लोगों का भी उल्लेख मिलता है। उदाहरण के लिए, उत्तर-पश्चिम में *यवनों* और कंबोजों के बारे में कहा गया है। इसके अतिरिक्त पश्चिमी भारत के भागों एवं दक्कन में रहने वाले भोजों, पिटिनिकों, आंध्रों, पुलिंदों के बारे में भी कहा गया है। वह जीते हुए क्षेत्रों (*विजित*) और राजकीय क्षेत्रों (*राजविषय*) को सीमावर्ती क्षेत्रों (*प्रत्यंत*) से अलग करता है एवं उन्हें चिह्नित करता है। अशोक के अभिलेख हमें यह आभास देते हैं कि पूर्व की ओर के साम्राज्य में उत्तर और दक्षिण बंगाल शामिल थे।

अशोक का तेरहवाँ शिलालेख

अशोक के सभी शिलालेखों में शिलालेख XIII को उसके समय का सबसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक आदेश माना जाता है। यह पुनर्स्मरण के लिए स्वर तैयार करता है। कलिंग (वर्तमान ओडिशा एवं आसपास का क्षेत्र) युद्ध जीत लिया गया था और युद्ध के कारण हुई मृत्यु, विनाश और पीड़ा पर उसे पछतावा था।

राज्याभिषेक के आठ वर्ष बाद देवताओं के प्रिय प्रियदस्सी राजा ने कलिंग को विजित किया। डेढ़ लाख लोग (बंदी बनाकर) देश से बाहर भेजे गए, एक लाख लोग मारे गए और इससे कई गुना लोग (महामारी, आदि से) मरे। इसके बाद अब जबकि कलिंग जीत लिया गया है देवताओं के प्रिय द्वारा धम्म का पालन बड़े आग्रह के साथ किया गया, धम्म की आकांक्षा रखी गई और धम्म की शिक्षा दी गई। कलिंग जीतने पर देवताओं के प्रिय को पश्चाताप हुआ क्योंकि जब एक स्वतंत्र देश जीता गया लोगों की हत्या, मृत्यु और देश निष्कासन से देवताओं के प्रिय को अत्यन्त दुख हुआ। और उनका मन बहुत भारी हो गया। देवताओं के प्रिय को इस बात से और भी दुख हुआ कि जो लोग वहाँ रहते हैं, चाहे वे ब्राह्मण हों, श्रमण हों या अन्य संप्रदाय के लोग जो अपने से बड़ों, माता-पिता और गुरुओं के प्रति आज्ञाकारिता रखते हैं और अपने मित्रों, परिचित व्यक्तियों, सहकर्मियों, संबंधियों, दासों एवं सेवकों के प्रति अनुराग रखते हैं ये सभी हिंसा, हत्या और अपने प्रियजनों के वियोग से पीड़ित एवं प्रभावित हुए हैं। यहाँ तक कि जो लोग भाग्य से बच गए हैं और जिनका प्रेम (युद्ध के क्रूर प्रभाव से) कम नहीं हुआ है वे भी अपने मित्रों, परिचितों, सहकर्मियों और संबंधियों की विपत्तियों के कारण अत्यंत पीड़ा का अनुभव कर रहे हैं। दुख में सभी पुरुषों की इस भागीदारी ने देवताओं के प्रिय के मन पर काफ़ी बोझ डाला है। यवनों (यूनानियों) के अलावा कोई ऐसी भूमि नहीं हैं जहाँ ब्राह्मणों एवं श्रमणों की धार्मिक व्यवस्था नहीं है और ऐसी कोई भूमि नहीं हैं जहाँ लोग एक दूसरे संप्रदाय को आश्रय न देते हों। कलिंग की विजय के दौरान जिन लोगों की हत्या हुई, मृत्यु हुई या देश निष्कासन हुआ आज यदि उसका सौवाँ या एक हज़ारवाँ भाग भी समान रूप से पीड़ित होता है तो यह देवताओं के प्रिय के मन पर बहुत भारी बोझ का कारण होगा।

देवताओं का प्रिय राजा विश्वास करता है कि क्षमा-योग्य गलती करने वाले लोगों को क्षमा कर देना चाहिए और देवताओं के प्रिय अपने साम्राज्य की वनवासी जनजातियों को भी सुलह के साथ रखते हैं लेकिन उन्हें चेतावनी देते हैं कि उनके पास पश्चाताप के दौरान भी शक्ति है, और वह उन्हें पश्चाताप के लिए कहते हैं, अन्यथा ऐसा न हो कि वे मारे जाएँ। क्योंकि देवताओं के प्रिय चाहते हैं कि किसी भी प्राणियों के प्रति हिंसा न हो। उन्हें आत्मसंयमित, शांत मन का और मृदु होना चाहिए।

देवताओं के प्रिय धम्म की विजय को सबसे बड़ी विजय मानते हैं और इसके अतिरिक्त देवताओं के प्रिय ने अपनी सभी सीमाओं पर 600 योजनों (लगभग 1500 मील) की दूरी तक यह विजय प्राप्त की है, जहाँ एंटिओकस नामक यूनानी राजा शासन करता है, और एंटिओकस के साम्राज्य के परे चार राजा टॉलेमी, एंटिगोनस, मागस और अलेक्ज़ेन्डर शासन करते हैं, और दक्षिण में चोलों और पाण्डयों एवं सीलोन तक विजय प्राप्त की है। इसी प्रकार साम्राज्य के विभिन्न भागों में यवन और कंबोज, नाभक और नाभपंक्ति, भोज एवं पितिनिक, आंध्र और पारिन्द (Parindas) हर जगह लोग देवताओं के प्रिय के धम्म के अनुदेशों का पालन करते हैं। यहाँ तक कि जहाँ देवताओं के प्रिय के दूत नहीं गए हैं वहाँ के लोग धम्म के अनुसार उसके आचरण, उसके उपदेशों और अनुदेशों का पालन करते हैं और इनका पालन जारी रखेंगे।

सर्वत्र विजय से जो प्राप्त हुआ है वह सर्वत्र विजय आनंददायक हैं। यह आनंद धम्म द्वारा विजय के माध यम से प्राप्त किया गया है — फिर भी यह केवल एक छोटी प्रसन्नता है क्योंकि देवताओं के प्रिय इसका महत्व उसके परिणामों में देखते हैं जो परालौकिक है।

धम्म के इस शिलालेख को इसलिए उत्कीर्ण किया गया है कि मेरा कोई पुत्र या प्रपौत्र नई विजय प्राप्त करने के बारे में न सोचे और वे जो भी जीत हासिल करें उनमें धैर्य और हल्के दंड से संतुष्ट रहें। उन्हें केवल धम्म द्वारा विजय को ही सच्ची विजय मानना चाहिए और धम्म में आनंद ही उनका संपूर्ण आनंद होना चाहिए क्योंकि यह इस लोक एवं परलोक दोनों में मूल्यवान है।

स्रोतः रोमिला थापर, *अशोक एंड द डिक्लाइन ऑफ़ द मौर्याज़ (द्वितीय संस्करण*), 1973, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 255.57)

अशोक के इस सबसे लंबे अभिलेख का विश्लेषण करने पर यह ध्यान देने योग्य है कि पश्चाताप की मनोदशा में भी अशोक अपनी शक्ति की प्रबल भावना व्यक्त करता है, विशेषकर वनवासियों से उचित व्यवहार की आशा करता है और उन्हें ऐसा न करने पर गंभीर परिणामों की भी चेतावनी देता है। वह अपने विशाल क्षेत्र की सीमाओं के बारे में भी जानकारी देता है जहाँ उसने अपनी प्रजा द्वारा *धम्म* की नीति का पालन करवाकर विजय की स्थापना की। इसके अतिरिक्त वह स्वयं की प्रशंसा करता है, अपनी पीठ थपथपाता है और *धम्म* के द्वारा एक सुखद वातावरण बनाने के लिए स्वयं को श्रेय देता है और *धम्म* के सिद्धांतों का सच्चाई से पालन करने पर अच्छे पुनर्जन्म या अच्छे अगले जीवन का आश्वासन देता है। अंत में, वह अनावश्यक विजय और हिंसा, रक्तपात और ऐसे आक्रमणों के कारण जीवन और संसाधनों की हानि की इच्छा को त्यागने के लिए अपनी भावी पीढ़ी को एक शांतिपूर्ण संदेश देता है। इसके बजाय वह उन्हें *धम्म* का पालन करने के लिए कहता है जो उसके अनुसार वर्तमान और भविष्य दोनों में प्रसन्नता का कारण बनता है और प्रसन्नता प्रदान करता है।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इस प्रकार हम स्वभाविक रूप से अनुमान लगाते हैं कि अशोक के अधीन मगध साम्राज्य ने उच्चतम विस्तार, संगठन और नियंत्रण प्राप्त किया। लेकिन हमें युद्धों के अंत या कम से कम आक्रमणों को टालने के लिए किए गए सचेत प्रयास की भी सशक्त भावना दिखाई देती है। इतिहासकार इस बात पर एकमत हैं कि राज्य की नीति में अहिंसा के सिद्धांत को फैलाना और लागू करना एक अनूठा प्रयोग था। हालांकि इतिहासकारों के एक समूह और दूसरे के बीच विवाद एवं असहमति है। एक मत अशोक को अपनी प्रजा के साथ-साथ संपूर्ण मानवता के कल्याण से संबंधित लोक परोपकारी पिता के रूप में आदर्श मानता है। इसके विरूद्ध यह तर्क दिया जाता है कि यह धारणा एक विशाल राज्य को वैचारिक रूप से बांधने के लिए एक जानबूझ कर किए गए प्रयास और एक विशाल राज्य को विचारधारानुरूप नियंत्रित करने के लिए 'सैद्धांतिक साधान' की अनदेखी करता है जो अन्यथा शासित व नियंत्रित करने में शायद कठिन साबित होता।

बोध प्रश्न-1

1) प्राचीन भारतीय अभिलेखों के दो प्रकारों का वर्णन किजिए।

....
....
....
....

2) अशोक के अभिलेखों के बारे में आपकी क्या समझ है?

....
....
....
....

5.5 प्राचीन भारत के कुछ अन्य महत्वपूर्ण अभिलेख

इस खंड में हम प्रारंभिक भारत के इतिहास के निर्माण में सहायक कुछ महत्वपूर्ण अभिलेखों की चर्चा करेंगे।

5.5.1 *प्रयाग-प्रशस्ति*

समुद्रगुप्त के दरबारी कवि हरिसेन/हरिषेण द्वारा गद्य और पद्य में रचित *प्रयाग-प्रशस्ति* समुद्रगुप्त के व्यक्तित्व, व्यक्तिगत गुणों, महानता और गौरवशाली पराक्रमों के बारे में एक पूर्वकालिक देदीप्यमान वर्णन है। यह अपने समय में गुप्त साम्राज्य की सीमाओं पर भी प्रकाश डालता है। यह आज भी उसके शासन का मुख्य ऐतिहासिक स्रोत बना हुआ है। मजूमदार (1996: 54) पुष्टि करते हैं:

> इलाहाबाद *प्रशस्ति* ने इस महान् नायक के नाम एवं प्रसिद्धि को गुमनामी से सुरक्षित रखा है और अन्य अभिलेखों के साथ यह गुप्तकाल के बारे में हमारे ज्ञान का प्रमुख आधार है।

यह संस्कृत भाषा एवं ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण है। उपिंदर सिंह (2008: 477) जानकारी देती हैं:

> इस *प्रशस्ति* में समुद्रगुप्त को एक असाधारण व्यक्तित्व से संपन्न पुरुष एवं आदर्श सम्राट के रूप में चित्रित किया गया है। इसके साथ ही उसकी सैन्य उपलब्धियों और विजयों के विषय में विस्तार से वर्णन किया गया है। इस *प्रशस्ति* में जिन शासकों एवं स्थानों का उल्लेख किया गया है उनमें से कई के बारे में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता किंतु फिर भी इलाहाबाद *प्रशस्ति* से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुप्त साम्राज्य उस समय अस्तित्व में रहे विविध राजनैतिक संबंधों के जटिल तंत्र के बिल्कुल केंद्र में स्थित था।

सिंह (2008: 478) आगे सूचित करती हैं:

> इलाहाबाद *प्रशस्ति* के आधार पर समुद्रगुप्त एक अथक साम्राज्यवादी सम्राट के रूप में चित्रित होता है किंतु ये सैन्य अभियान हरिषेण के अपने सम्राट के छविचित्र का केवल एक हिस्सा थे।

उसका वर्णन एक योग्य एवं सहिष्णु शासक के रूप में भी किया गया जो अपनी प्रजा के लोक-कल्याण के प्रति चिंताशील था। प्राचीन राजाओं की *प्रशस्तियों* में अक्सर दिखाई देने वाले ऐसे पारंपरिक निरूपणों के अतिरिक्त कुछ ग़ैर-पारंपरिक तत्व भी हैं जो समुद्रगुप्त की वास्तविक प्रतिभा पर आधारित रहे होंगे। उदाहरण के लिए, ऐसा कहा गया है कि उसकी तीक्ष्ण और परिष्कृत बौद्धिकता के सामने बृहस्पति (देवताओं के आचार्य) भी लज्जित हो जाते थे और इसी प्रकार उसके शानदार संगीत प्रदर्शन के सामने तुम्बुरू एवं नारद भी लज्जित हो जाते थे। उसे *कविराज* (कवियों में राजा) कहा गया है जिसकी रचनाएँ श्रेष्ठ कवियों में भी श्रेष्ठतम थीं।

प्रशस्ति के अनुसार वे लोग एवं स्थल, जिनमें से कुछ दूरवर्ती क्षेत्रों में थे, जिन्हें हरिषेण के संरक्षक-राजा द्वारा परास्त और अपने अधीन किया गया था उन्हें निम्नलिखित में वर्गीकृत किया जा सकता है:

1) गंगा-यमुना *दोआब*[4] के राजा जिनके क्षेत्र गुप्त साम्राज्य में मिला लिए गए;

2) पंजाब में मौर्य साम्राज्य के अवशेषों पर उत्तजीवी गणतंत्र;

3) पूर्वी हिमालय राज्यों एवं कुछ सीमावर्ती प्रांतों, जैसे वर्तमान का नेपाल, असम एवं बंगाल, के शासक जो उपहार देने पर राज़ी हुए;

4) मध्य भारत में विन्ध्य[5] पर्वतों के साथ लगे वन-राज्यों (*आटविक राज्य*) के राजा एवं दक्खन[6] के राजा जिन्हें बलपूर्वक सेवक (दास) बनाया गया;

5) पूर्वी दक्कन और दक्षिण भारत में 12 शासक जिन्हें पकड़ा गया और पराजित (*ग्रहण*) किया गया और फिर उन्हें नज़राना देने की शर्त पर स्वतंत्र/पुनर्स्थापित (*मोक्ष*) किया गया। समुद्रगुप्त की भुजाओं का भार कांची[7] तक पहुँचा जहाँ पल्लवों को उसका आधिपत्य मानने एवं स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया। इन राजाओं की सूची इस प्रकार है:

   क) कोसल का महेन्द्र

   ख) कोवरल/कैरल/कौरल का मंथराज/मंतराज

   ग) महाकांतर का व्याघ्रराज

   घ) पिस्तपुर/पिस्तपुर का महेन्द्र

   ड.) कोट्टुर का स्वामीदत्त

   च) इरंडेपल्ली/इरंडपल्ल का दमन

   छ) काँची का विष्णुगोप

   ज) वेंगी का हस्तिवर्मन

   झ) अवमुक्त का निलराज/नीलराज

   ण) पलक्क/पालाक्कड़ का उग्रसेन

   ट) देवराष्ट्र का कुबेर

   ठ) कुस्थलपुरा/कुस्तलपुरा का धनंजय

6) शक और कुषाण जिनमें से कुछ वर्तमान अफ़ग़ानिस्तान में स्थित थे

यह स्तुति अभिलेख इस बात की पुष्टि करता है कि समुद्रगुप्त ने आक्रामक रूप से उपरोक्त शासकों को सत्ता से बाहर कर दिया और अपने वर्चस्व के सामने उनको झुकाया। उसका प्रभाव और प्रतिष्ठा तत्कालीन गुप्त साम्राज्य की परिधि से परे फैल गई। आर. एस. शर्मा (2018 [2005]: 233) कहते हैं:

---

[4] दो नदियों के बीच की भूमि

[5] मध्य-पश्चिम भारत में पर्वत श्रृंखलाओं, पहाड़ियों, उच्च भूमियों और पठारों की एक अनिरंतर श्रृंखला

[6] पश्चिमी और पूर्वी घाटों के बीच नर्मदा नदी के दक्षिण में स्थित विशाल पठार और प्रायद्वीपीय भू-भाग

[7] वर्तमान काँचीपुरम शहर, तमिलनाडु

> यदि हम इलाहाबाद के स्तुतिपूर्ण अभिलेख पर विश्वास करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्रगुप्त को पराजय के बारे में पता ही नहीं था और उसके पराक्रम एवं सैनिक नेतृत्व के कारण उसे भारत का नेपोलियन कहा जाता है ... अपने पूर्ववर्तियों की तुलना में उसकी शक्ति का प्रभाव एक काफ़ी विशाल क्षेत्र में रहा।

अभिलेख के आधार पर इतिहासकारों का मानना है कि उसने ***आर्यावर्त*** में दो आक्रमण अभियान चलाए थे। अभिलेख पहले मुख्यतः पश्चिमी गंगा मैदानी एवं आधुनिक दिल्ली के आसपास के क्षेत्र में चार *आर्यावर्त* के शासकों की पराजय के बारे में बताता है, फिर दक्षिण में किए गए अभियानों का वर्णन करता है और पुनः नौ *आर्यावर्त* शासकों की हार की घोषणा करता है। *आर्यावर्त* के इन शासकों को उखाड़ फेंका गया, उनका नाश कर दिया गया और मार डाला गया। *आर्यावर्त* में उसकी साम्राज्यवादी सफलता ने उसे गंगा घाटी एवं आसपास के क्षेत्रों पर दृढ़ नियंत्रण स्थापित करने में सक्षम बनाया। *आर्यावर्त* के राजा जो उसकी शक्ति के समक्ष नहीं टिक सके वे थेः

1) अछिच्छत्र (बरेली जिला, उत्तर प्रदेश) पर शासन करने वाला राजा अच्युत/अच्युत-नंदिन

2) नागसेन – वह नाग/नव-नागवंश से संबंधित था जिसने सात पीढ़ियों तक तीन राजधानियों से शासन किया थाः

   क) मथुरा (उत्तर प्रदेश)

   ख) पद्मावती (आधुनिक पवाया, मध्य प्रदेश)

   ग) कांतिपुरी/कांतिपुर (ग्वालियर क्षेत्र, मध्य प्रदेश)

3) बलवर्मन/बलवर्मा – एक मत के अनुसार वह वर्मन राजवंश (लगभग 350-650 सी ई) का सम्राट था जो कि कामरूप (प्राचीन असम क्षेत्र) साम्राज्य का पहला ऐतिहासिक राजवंश था। इस मत के अनुसार उसने चौथी-पाँचवीं शताब्दी सी ई के दौरान शासन किया। एक अन्य मत उसे कौशांबी (प्रयागराज के समीप, उत्तर प्रदेश) के माघ वंश से संबंधित बताता है। यह उन्हें मौखरियों का पूर्वज मानता है जिन्होंने आरंभ में गुप्तों के सामंतों के रूप में सेवा की और जिनके नाम के अंत में 'वर्मन' प्रत्यय जुड़ा हुआ है। एक अन्य मत उसे एरण के शक शासक श्रीधर-वर्मन के उत्तराधिकारी के तौर पर देखता है। यह इस बात पर आधारित है कि समुद्रगुप्त ने एरण के शकों का अंत किया, जैसा कि एरण में उसके अभिलेख में कहा गया है।

4) कोटा-कुलज (Kota-Kulaja): वह कोटा परिवार से संबंधित था जो कि एक राजनीतिक शक्ति के रूप में वर्तमान पंजाब के पूर्वी भाग एवं दिल्ली क्षेत्र के आसपास स्थित था।

5) चंद्रवर्मनः वह शायद चौथी शताब्दी सी ई में दक्षिण-पश्चिम बंगाल का शासक था। इस मत के अनुसार उसका राज्य पुष्करण (वर्तमान में पखन्न गाँव, बाँकुड़ा जिला, पश्चिम बंगाल) में था। अन्य मत यह कहता है कि यह वही चंद्रवर्मन है जिसका उल्लेख मंदसौर (मालवा क्षेत्र, मध्य प्रदेश) से मिले एक अभिलेख में मिला है।

अब हम इस स्तुति की रचना करने वाले हरिषेण के बारे में बात करते हैं। वह राजदरबार में एक उच्च कोटि का अधिकारी था यह अभिलेख में उल्लिखित पदवियों/उपाधियों से दिखाई पड़ता हैः

1) *कुमारमात्य* (उच्च अधिकारियों का पद)
2) *महादंडनायक* (एक महत्वपूर्ण न्यायिक या सैनिक अधिकारी)
3) *संधिविग्रहिक* (युद्ध एवं शांति का अधिकारी/मंत्री)

यह उत्कृष्ट रचना भी उसे एक कुशल लेखक के तौर पर दर्शाती है।

यह *प्रशस्ति* उसकी छः शताब्दियों पूर्व एक अशोक स्तंभ पर उत्कीर्ण की गई थी और कई शताब्दियों बाद प्रयागराज लाई गयी थी। आश्चर्यजनक रूप से इस पर विभिन्न कालों के अभिलेख उत्कीर्ण हैंः

1) प्राकृत भाषा और ब्राह्मी लिपि में अशोक का अभिलेख

2) *प्रयाग-प्रशस्ति*

3) फ़ारसी में मुगल सम्राट जहाँगीर का अभिलेख जो उसके वंश की झलक प्रस्तुत करता है

ये अभिलेख तीन अलग-अलग भाषाओं में हैं और तीन अलग सहस्राब्दियों से संबंधित हैं। स्तंभ की सतह पर कुछ अन्य, संक्षिप्त, विविध एवं कुछ कम महत्व वाले अभिलेख भी मिलते हैं। समुद्रगुप्त की *प्रशस्ति* के लिए अशोक स्तंभ को चुनने के संबंध में थापर (2013: 341-42) स्पष्ट करती हैं और कुछ तर्कसंगत एवं विचारोत्प्रेरक प्रश्न उठाती हैं जो शायद इस पहेली का उत्तर दे सकें:

> इस स्तंभ पर समुद्रगुप्त की *प्रशस्ति* क्यों उत्कीर्ण की गई? यदि गुप्तकाल में अशोक की ब्राह्मी पढ़ी जा सकती थी, जो संभव है, तो इस गुप्त अभिलेख में सैन्य विजय की प्रशंसा का संदेश अशोक की हिंसा के विरोध का खंडन करता है। क्या यह अशोक को निम्नतर दर्शाने और समुद्रगुप्त को महानतर विजेता के रूप में दर्शाने का प्रयास था? लेकिन यह प्रयोजन व कार्य तो उसी तरह के एक अलग विशाल स्तंभ पर ज़्यादा प्रभावी हो सकता था। क्या अशोक के संदेश को एक बौद्ध प्रवचन के रूप में देखा गया था जिसे अधिलिखित करने की आवश्यकता थी? या इसके विपरीत यह मौर्य सम्राट की वैधता का आह्वान करने वाली ऐतिहासिक निरंतरता का प्रयास था? गुप्त काल में कुछ मौर्य रूपों का अनुकरण करने का प्रयास किया गया, विशेषकर स्तंभों के शीर्षों में। ऐतिहासिक निरंतरता के इस तरह के प्रयासों में प्रशस्तियों को अन्य पुराने शिलालेखों के साथ उत्कीर्ण होने के लिए प्रेरित किया ... भले ही अवचेतना में, लेकिन ये स्तंभ ऐतिहासिक स्मृति के रूप में शिलालेखों के महत्व को उजागर करते हैं ... स्तंभों को पहले के समय में विजय एवं प्रसिद्धि के प्रतीक के तौर पर *जयस्तंभों* और *कीर्तिस्तंभों* के रूप में संदर्भित किया जाता था, भले ही अशोक के मामले में उसने विजय के माध्यम से प्रसिद्धि को अस्वीकार कर दिया। समुद्रगुप्त का अभिलेख उसकी विजयों का दावा प्रस्तुत करता है लेकिन जहाँगीर का अभिलेख एक सम्मानीय वंश का दावा है.. यह उत्कीर्ण करने के लिए एक सुविधाजनक सतह खोजने का प्रश्न नहीं था बल्कि जान-बूझकर पूर्ववर्ती शासक या घटना से संबंध जोड़ने का विकल्प था। अभिलेख के स्थान का चुनाव काफ़ी सोच-विचार कर किया गया था। यह एक ऐतिहासिक परम्परा के महत्व को भी रेखांकित करता है ...

5.5.2 जूनागढ़ अभिलेख

जूनागढ़/गिरनार (गुजरात) शिलालेख से पता चलता है कि सुदर्शन झील नामक एक कृत्रिम जलाशय/तटबंध का निर्माण मौर्यों के अधीन प्रांतीय प्रशासक और चंद्रगुप्त मौर्य के बहनोई पुष्यगुप्त द्वारा किया गया था। यह अभिलेख सौराष्ट्र[8] के शक शासक रूद्रदामन को इस बाँध के गंभीर रूप से और बड़े पैमाने पर क्षतिग्रस्त होने के कारण उसके प्रांतीय प्रशासक सुविशाख (लगभग 150 सी ई) के द्वारा पूरी तरह से मरम्मत करने के लिए श्रेय देता है। इसमें रूद्रदामन द्वारा बड़ी धनराशि के निवेश का विशेष उल्लेख है। हालांकि 457 सी ई में यह फिर से भारी बारिश के कारण क्षतिग्रस्त हो गया और इस बार इसे पर्णदत्त (गुप्त वंश के सम्राट स्कंदगुप्त द्वारा सौराष्ट्र का नवनियुक्त प्रशासक) और पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित द्वारा पुनर्स्थापित किया गया।

इस अभिलेख के संबंध में थापर (2013: 343) उचित अवलोकन करती हैं:

> ये 800 वर्षों तक फैले शिलालेखों के तीन समूह हैं लेकिन ये स्पष्ट रूप से एक ही बाँध के निर्माण और टूटने से जुड़े हुए हैं। प्रभावशाली बात यह है कि पिछली क्षतियों के बारे में उन्हें जानकारी थी और उन्हें दर्ज किया गया है। शिलालेखों के उत्कीर्णन में एक सुझाई गई निरंतरता है और ऐसा प्रतीत होता है कि पहले वाले अभिलेख तब भी पढ़े जा सकते थे। बाँध की पिछली मरम्मत के संदर्भ किवदंतियों या अफ़वाहों पर आधारित नहीं थे बल्कि जो कुछ अतीत में घटित हो चुका था उसकी दर्ज की गई सटीक जानकारी पर आधारित थे।

थापर (2002: 224) इस अभिलेख के संबंध में एक अन्य लेख में अतिरिक्त जानकारी प्रदान करती हैं:

> शिलालेख में रूद्रदामन की नर्मदा घाटी में विजय, सातवाहन राजा (नर्मदा के दक्षिण में) के विरुद्ध उसके अभियान और राजस्थान में यौधेय *गण-संघ* पर उसकी विजय का प्रशंसात्मक रूप में उल्लेख है।

5.5.3 हाथीगुम्फा अभिलेख

प्रशस्तियों का एक और उत्कृष्ट उदाहरण चेदि राजा खारवेल की आत्मकथात्मक स्तुति है। खारवेल ने पहली शताब्दी बी सी ई के मध्य में ओडिशा के तटीय और पूर्वी हिस्से में शासन किया था। हाथीगुम्फा (शाब्दिक अर्थ 'हाथी गुफा') भुवनेश्वर के पास उदयगिरि पहाड़ियों में स्थित है। थापर (2013: 329-30) हमें जानकारी देती हैं:

[8] इसे सोरठ या काठियावाड़ भी कहा जाता है। यह गुजरात का एक प्रायद्वीपीय क्षेत्र है।

> यह वास्तव में उसके प्रारंभिक जीवन की उपलब्धियों का वर्ष दर वर्ष वृत्तांत है। अभिलेख के एक जैन केंद्र के निकट स्थित होने का कारण शायद यह था कि राजा जैन धर्म का अनुयायी था। खारवेल दक्कन क्षेत्र को लेकर सातवाहनों के संघर्ष के बारे में उल्लेख करता है। वह *यवन* राजा दिमित, जो शायद भारतीय-यूनानी शासक डेमेट्रियस (Demetrios) था, का उल्लेख करता है जिसकी मध्य भारत में उपस्थिति का ज़िक्र अन्य स्रोतों में किया गया है ... दूसरे संघर्षों में दक्षिण भारत के राज्यों एवं खारवेल के राज्य के निकट मध्य गंगा मैदान के राज्यों के विरुद्ध संघर्ष शामिल थे। वह जैन ग्रंथों के संकलन में रुचि लेता है जो कि निस्संदेहात्मक रूप से बौद्ध *मठों* में किए जा रहे ग्रंथों के संकलन का अनुकरण था और जिसने एक विशिष्ट ऐतिहासिक परंपरा को जन्म दिया। खारवेल द्वारा सभी दिशाओं से आने वाले साधुओं एवं भिक्षुओं की एक सभा बुलाने, अपने आपको अन्य उपाधियों जैसे *भिक्खु राजा, धम्म राजा* (भिक्षुओं और धर्म का राजा), आदि के तौर पर वर्णित करना और सभी संप्रदायों के प्रति अपने सम्मान – *सव पासम्द पूजको* – का उल्लेख करना अशोक मौर्य के कार्यों का अनुसरण करने के प्रयत्न को सुझाता है जिसे उसने अशोक के अभिलेखों और बौद्ध ग्रंथों से जाना होगा। उसके द्वारा ज़िक्र किए गए सभी स्थानों के नाम पहचाने जा चुके हैं।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, यह जैन सम्प्रदाय को दिए गए संरक्षण एवं सभी धर्मों/विश्वासों के प्रति सम्मान को प्रकट करता है। इसमें यह भी कहा गया है कि *ब्राह्मणों* को भी करों से छूट दी गई थी और सिंचाई के उद्देश्य से तालाबों और नहरों के निर्माण का उल्लेख है। यह विशेष रूप से अपनी राजधानी तक एक नहर की खुदाई पर खारवेल द्वारा किए गए विशाल व्यय का उल्लेख करता है।

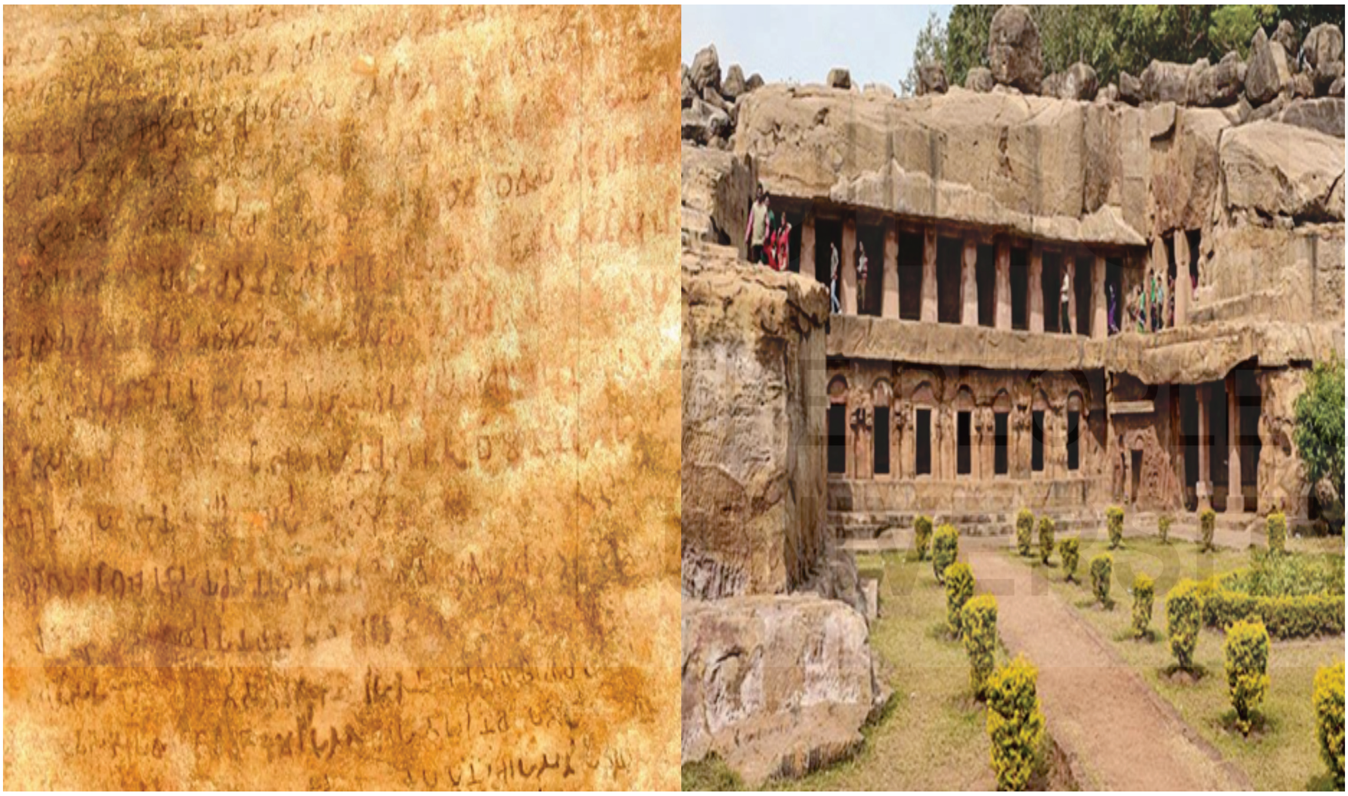

बाएँ: हाथीगुम्फा शिलालेख

श्रेय: अमितव

स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स; https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Hatigumfa.jpg

दाएँ: उदयगिरि गुफा परिसर जहाँ हाथीगुम्फा अभिलेख स्थित है

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण स्मारक क्रमांक एन.ओ.आर..62

श्रेय: बर्नार्ड गगनोन

स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स; https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Udayagiri_ Caves_-_Rani_Gumpha_01.jpg

5.5.4 हेलियोडोरस का अभिलेख

इस अभिलेख के स्तंभ को बेसनगर (विदिशा जिला, मध्य प्रदेश) में लगभग 113 बी सी ई में स्थापित किया गया था जिसे भारतीय-यूनानी (Indo-Greek) राजदूत हेलियोडोरस द्वारा बनवाया गया था जो कि हिन्दू धर्म स्वीकार करने वाले पहले उल्लिखित भारतीय-यूनानी लोगों में से एक थे। यह वैष्णववाद से संबंधित भारत में पहला ज्ञात शिलालेख है। थापर (2013: 335) इसे इस प्रकार स्पष्ट करती हैं:

प्राकृत के दानात्मक अभिलेख (*दान-शासन;* votive inscriptions) केवल बौद्ध स्थलों तक सीमित नहीं थे। अन्य अभिलेखों में ईसाई[9] युग के आरंभ होने से पहले विष्णु को समर्पित एक स्तंभ शिलालेख है। यह स्तंभ हेलियोडोरस के द्वारा स्थापित किया गया था ... जो उत्तर-पश्चिम में तक्षशिला शहर का निवासी था। वह स्वयं को एक *योन/यवन* के रूप में वर्णित करता है। इस शब्द का उपयोग यूनानी और पश्चिमी एशियाई लोगों के लिए किया जाता है। वह *राजन* कासीपुत के दरबार में *महाराजा* अंतलिकिद/अंतिआल्किदस् का दूत है। यह स्तंभ उसके वासुदेव संप्रदाय के अनुयायी होने की उद्घोषणा है जो कि विष्णु की पूजाओं के कई रूपों में से एक है। यह ध्यान देने योग्य है कि वह अपने राजा को *महाराजा* के तौर पर संबोधित करता है जबकि स्थानीय भारतीय राजा केवल *राजन* है।

5.6 ऐतिहासिक परिवर्तन के चिह्न के रूप में अभिलेखों की भाषा में परिवर्तन

अभिलेखों की भाषा एक इतिहासकार को अपने आप में एक ऐतिहासिक प्रक्षेपपथ का पता लगाने में मदद करती है। थापर (2013: 320.21) तर्क देती हैं:

भाषा में परिवर्तन कोई अकेली घटना नहीं है बल्कि अन्य ऐतिहासिक घटनाओं से जुड़ी है। कौन किस भाषा का उपयोग करता है और किन उद्देश्यों के लिए करता है यह अतीत के समाजों को समझने के लिए मूलभूत है क्योंकि एक भाषा का एक समान उपयोग नहीं होता था। यह आरंभिक भारतीय अभिलेखों में दिलचस्प रूप से परिलक्षित होता है। प्रारंभिक ईसाई युग तक वे केवल प्राकृत (व्यापक रूप से इस्तेमाल की जाने वाली एक विविधतापूर्ण पुरानी इंडो-आर्यन स्थानीय भाषा) में हैं, हालांकि संस्कृत का उपयोग साथ ही साथ अन्य उद्देश्यों के लिए किया जा रहा था जैसे कि वैदिक अनुष्ठानों में। बाद में, पहली सहस्राब्दि ए डी[10] के संक्रमणकाल में संस्कृत का प्रयोग अभिलेखों में किया जाने लगा और इसके साथ ही यह राजदरबार की भाषा बन गई, हालांकि प्राकृत आमतौर पर इस्तेमाल की जाने वाली भाषा बनी रही।

अशोक के अभिलेखों के बारे में थापर (2013: 324) स्पष्ट करती हैं:

अभिलेखों का संवादात्मक स्वर संस्कृत में अनुपयुक्त रहा होगा क्योंकि श्रोता बड़े पैमाने पर प्राकृत भाषी रहे होंगे। राजा ने यह उल्लेख करते हुए स्पष्ट किया है कि उसके अधिकारियों को उसके अभिलेखों को पढ़ना होता था जहाँ कहीं भी लोग इकट्ठा होते थे और अशोक ने जो कहा था उसे सुनना चाहते थे। ऐसे भी क्षेत्र थे जहाँ लोगों के बीच साक्षरता अभिलेखों को पढ़ने के लिए पर्याप्त नहीं थी, हालांकि राज्य के अधिकारियों, बौद्ध भिक्षुओं, व्यापारियों और कुछ अन्य लोगों में प्राकृत में साक्षरता प्रामाणिक रूप से थी। बोलियों के बीच भिन्नता व्यापक रूप से बोली जाने वाली भाषा की ओर इशारा करती है। संभवतः पाटलिपुत्र की राजधानी में प्रचलित मागधी प्राकृत में लिखी गई होगी और स्थानीय लेखकों एवं उत्कीर्णकों ने स्थानीय बोली का उपयोग शुरू किया ... आर्माइक (Aramaic) में लिखे गए अशोक के अभिलेखों में प्राकृत के कुछ तत्व समावेशित हैं जो उस क्षेत्र में प्राकृत बोलने वालों की उपस्थिति दर्शाते हैं। अशोक का एक द्विभाषीय आर्माइक-यूनानी अभिलेख यूनानी भाषी जनसंख्या को दर्शाता है जिसकी पुष्टि प्राकृत में लिखे वृहद शिलालेखों के यूनानी में अनुवाद से होती है। इनसे यूनानी (Hellenistic) पश्चिमी एशिया में घटनाओं के लिए अभिलेखीय परस्पर संदर्भ स्थापित किया जा सकता था। एक अभिलेख के पाँच यूनानी राजाओं के उल्लेख से उनके बारे में जानकारी और भी सुदृढ़ हो गई जो अशोक के समकालीन थे ... जिस प्रकार की यूनानी भाषा का इस्तेमाल किया गया था वह यूनानी दुनिया के मध्य लोक-भाषा थी जिसमें क्षेत्रीय भिन्नताएँ थीं और इसलिए यह भारत में प्राकृत के उपयोग के समानांतर है। भाषाओं में इस्तेमाल होने वाले भिन्न प्रतिरूप ऐतिहासिक कथन बन जाते हैं।

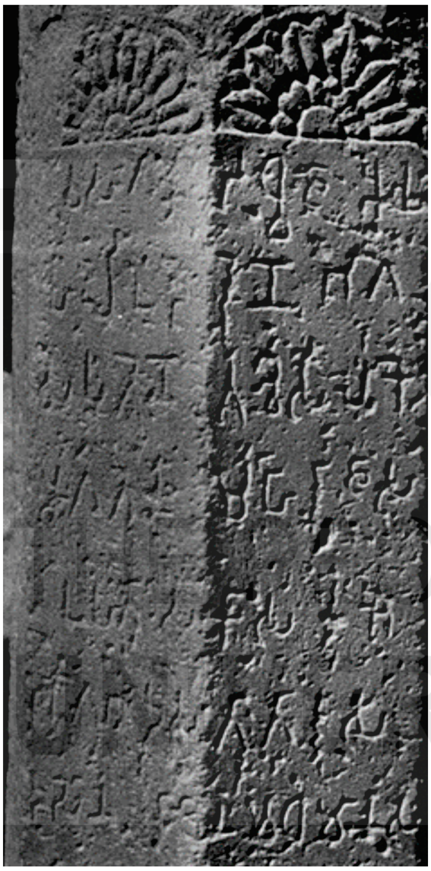

हेलियोडोरस का स्तंभ
श्रेय: पब्लिक-रिर्सोस-ओआरजी
स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स; https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Heliodorus_pillar_inscription.jpg

---

[9] अब हम 'ईसाई युग' (Christian Era) की जगह 'सामान्य युग' (Common Era) का इस्तेमाल करते हैं। यह इस एकमत धारणा पर आधारित है कि इस युग के दौरान घटनाएँ और विकास केवल ईसाई दुनिया में सीमित नहीं थे बल्कि पूरी दुनिया में हो रहे थे।

[10] अब हम 'एन्नो डोमिनी' (AD) के स्थान पर 'कॉमन एरा' (CE) का प्रयोग करते हैं।

थापर (2013: 325) आगे हमें जानकारी देती हैं:

> पाँच यूनानी राजाओं के नामों का उल्लेख है: [... जिस क्षेत्र में योन राजा एंटिओकस शासन करता था और एंटिओकस के क्षेत्र के आगे चार राजा टॉलेमी, एंटिगोकस, मगस/मागस और अलेक्ज़ेंडर ...]।
>
> *योन* राजाओं का यह संदर्भ प्राचीन भारतीय कालक्रम के आधार पर गया है क्योंकि अशोक के समकालीन के रूप में इन राजाओं की तिथियाँ दृढ़ रूप से स्थापित हैं। इस साक्ष्य की निश्चितता सैंट्रोकोटस की चंद्रगुप्त से तुलना की जगह लेती है जिसे विलियम जोन्स द्वारा सुझाया गया था। कालक्रम का आधार अभिलेखीय साक्ष्य से प्राप्त होता है जिसने ऐतिहासिक पुनर्निर्माण को एक मज़बूत आधार प्रदान किया।

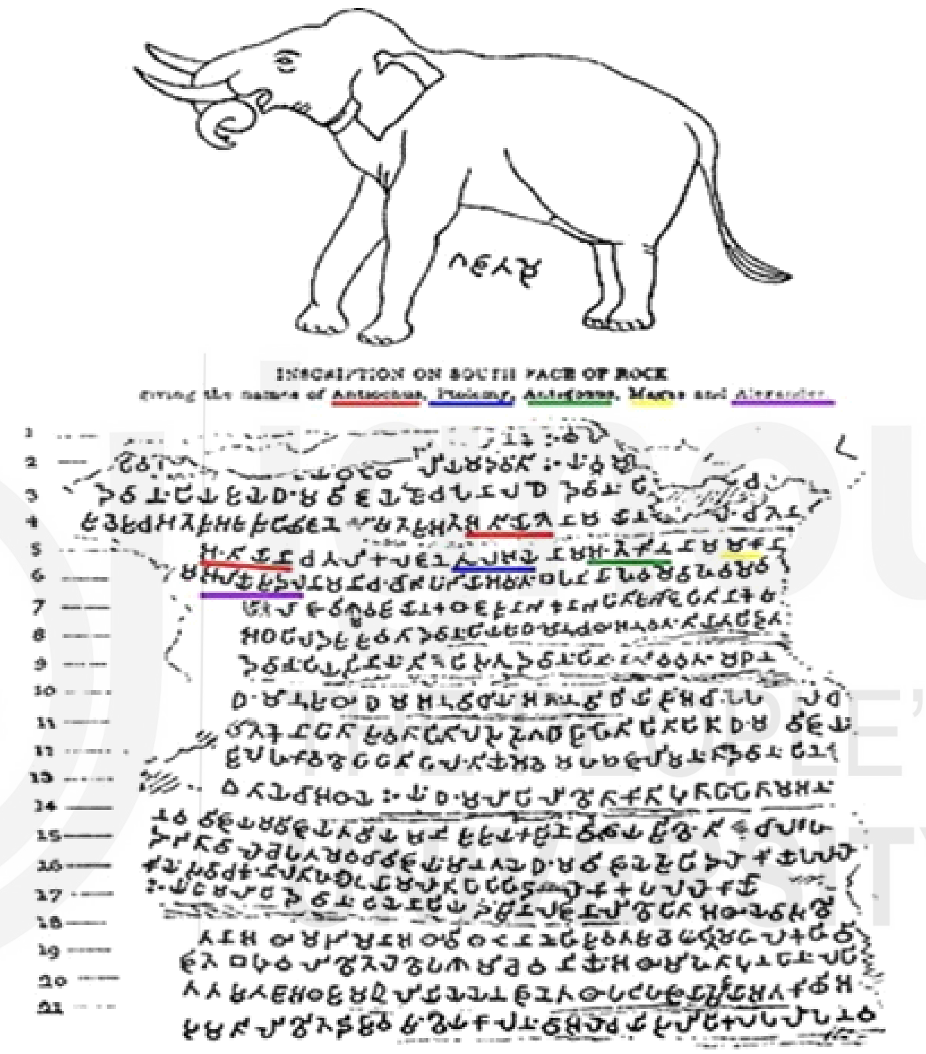

कलसी/खालसी (देरहादून जिला, उत्तराखंड) से प्राप्त यूनानी राजाओं के नामों के साथ अशोक का अभिलेख

श्रेय: अलेक्जेंडर कनिंघम, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, संस्करण 1, गवर्नमेंट सेंट्रल प्रेस, शिमला, 1871, पृ. 247

स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स; https://commons.wikimedia.org/wiki/File: Khalsi_ rock_ edict_ of_Ashoka_with_names_of_the_Greek_kings.jpg

बाद में कुषाण अभिलेख और सिक्के विभिन्न भाषाओं और लिपियों के मिश्रण और सहअस्तित्व का संकेत देते हैं। हालांकि, पहली सहस्राब्दि सी ई के मध्य से संस्कृत ने राजदरबार और प्रशासन की स्थापित भाषा का दर्जा हासिल कर लिया था। संस्कृत में अभिलेखों को लिखने एवं तैयार करने की दिशा में प्रकृति उभर रही थी जिसे थापर (2002: 224) 'ऐतिहासिक परिवर्तन की भावना को प्रभावी ढंग से व्यक्त करने' के रूप में परिभाषित करती हैं। शर्मा (2018 [2005]: 192) जूनागढ़ अभिलेख की ओर इशारा करते हुए हमें ध्यान दिलाते हैं:

> रुद्रदामन का संस्कृत के प्रति विशिष्ट लगाव था। यद्यपि उसके पूर्वज मध्य एशियाई थे, उसने विशुद्ध संस्कृत में प्रथम विस्तृत अभिलेख जारी किया। इसके पूर्व में भारत में सभी अभिलेख प्राकृत में लिखे गए थे जिसे अशोक के द्वारा राजभाषा बना दिया गया था।

शर्मा (2018 [2005]: 199) हमें आगे जानकारी देते हैं:

> जूनागढ़ अभिलेख में *काव्य* शैली का सर्वप्रथम नमूना मिलता है ... इसके बाद, अभिलेख विशुद्ध संस्कृत में लिखे जाने लगे, यद्यपि अभिलेखों में प्राकृत का इस्तेमाल चौथी शताब्दी और इसके बाद भी जारी रहा।

अभिलेखों की उभरती हुई भाषा के रूप में जूनागढ़ अभिलेख से आरंभ हुए संस्कृत की ओर बदलाव के बारे में थापर (2002: 224) कुछ प्रासंगिक प्रश्नों को स्पष्ट करती हैं और उठाती हैं:

> भाषा आम तौर पर इस्तेमाल की जाने वाली संस्कृत भाषा है जिसे पाणिनि ने व्याकरण का आधार बनाया था। हो सकता है कि उसने संस्कृत को वर्तमान अभिलेखों में इस्तेमाल की गई प्राकृतों के स्थान पर वरीयता देना स्वयं को रूढ़िवादियों की परंपराओं द्वारा समर्थित दर्शाने के लिए चुना हो, भले ही वे ऐसे शासकों को निम्न स्थिति वाले क्षत्रियों के रूप में वर्गीकृत कर रहे हों। क्या रुद्रदामन जानबूझकर स्वयं को ब्राह्मणवाद से जोड़ रहा था ...? यह केवल एक धर्म के प्रति संरक्षण का कार्य नहीं था बल्कि एक विचारधारा के साथ संबंधित होना भी था। यह एक विडंबना है कि अभिलेखों में संस्कृत के प्रयोग का आरंभ किसी ऐसे व्यक्ति से हुआ है जिसके *वर्ण* की स्थिति पर प्रश्न उठाया जा सकता था। क्या वह शासक के रूप में अपनी वैधता स्थापित करने में रूढ़िवादियों का समर्थन हासिल करने का प्रयास कर रहा था? या वह एक भाषा के प्रति समानांतर संरक्षण प्रतिबिंबित कर रहा था जो कि धीरे-धीरे राजदरबारों में प्रमुखता हासिल कर रही थी? उसकी विजयों की सूची देने के अतिरिक्त, जैसा कि इन अभिलेखों में आम है, उसे साहित्य के प्रति एक संवेदनशील व्यक्ति के रूप में वर्णित किया गया है जो अब समय के सांस्कृतिक परिदृश्य के अनुसार संस्कृत का बड़े अच्छे तरीके से उपयोग करने में सक्षम था। यह प्रशंसात्मक स्तुतियों में राजाओं के साथ जुड़ी एक नियमित उपलब्धि बन गई और शीघ्रता से लोकप्रिय हो गई और इसी प्रकार संस्कृत के अभिलेख भी लोकप्रिय रूप से जारी किए जाने लगे।

गुप्त काल के दौरान संस्कृत में प्रभावशाली ढंग से उन्नति हुई। वह परिष्कृत हो गई और साहित्यिक गतिविधियों में बड़ी तेजी आई। इस युग में संस्कृत साहित्य में उच्च मानक स्थापित किए गए, विशेषकर, सर्वोत्तम संस्कृत लेखक कालिदास, जो चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के राजदरबार के *नवरत्नों* में से एक थे, की रचनाएँ – जैसे *अभिज्ञान शाकुंतलम, मालविकाग्निमित्रम, विक्रमोवर्शीयम, रघुवंशम, कुमार संभवम, मेघदूतम,* आदि। यह मानक गुप्त अभिलेखों में भी स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। सभी की रचना संस्कृत में की गई है। प्राकृत अब हीन मानी जाने लगी थी और इस भाषा की यह हीन स्थिति दिलचस्प रूप से उस समय की नाटक रचनाओं में दर्शायी गई है जिनमें उच्च जाति के लोग संस्कृत बोलते थे, जबकि स्त्रियाँ और निम्न जाति के लोग प्राकृत। संस्कृत का बड़े पैमाने पर उपयोग गुप्त शासकों की राजनीतिक शक्ति एवं अधिकार का प्रतीक बन गया था और राजत्व को वैधता प्रदान करने का एक प्रभावी एवं कुशल साधन भी बन गया।

जब 19वीं शताब्दी के अंत में कई प्रारंभिक भारतीय अभिलेखों की खोज की गई और उनका अध्ययन किया गया तो विशेषज्ञ सुस्पष्ट विविधताओं को देख एवं पहचान सकते थे। अभिलेखों की भाषा में परिवर्तन के कालक्रम का निर्माण किया जा सकता है क्योंकि इनमें से कई अभिलेखों की तिथि सटीक रूप से अंकित थी। समुद्रगुप्त की *प्रयाग-प्रशस्ति* जैसे कई अभिलेखों में शासक/राजा का उल्लेख होता था जिससे राजवंशीय इतिहास को समझना संभव हुआ। उत्तर-गुप्त काल से इस तरह के अभिलेखों में उल्लेखनीय वृद्धि साहित्यिक स्रोतों की कमी की भरपाई करने में सक्षम रही है। ये अब तेज़ी से राजकीय घोषणाओं और शक्ति के प्रतीक के रूप में देखे जाने लगे, जैसा कि एक पूर्वकालिक अभिलेख के स्थल को जानबूझ कर चुनने में प्रदर्शित होता है। इसे थापर (2013: 321) कहती हैं, 'जानबूझकर अतीत से संबंध स्थापित करना और वर्तमान को वैधता प्रदान करने के लिए उपयोग करना'।

बोध प्रश्न 2

1) समुद्रगुप्त का महिमामंडन *प्रयाग-प्रशस्ति* में किस प्रकार किया गया है?

....

....

....

....

2) अभिलेखों की भाषा में परिवर्तन किस प्रकार ऐतिहासिक परिवर्तन की गवाही देता है?

....

....

....

5.7 सारांश

आपने अभिलेखों के नज़रिए से इस इकाई का अध्ययन किया जो प्राचीन भारतीयों में विद्यमान एक ऐतिहासिक जागरूकता को प्रदर्शित करते हैं। यदि कोई ऐतिहासिक चेतना नहीं थी और एक महत्वपूर्ण घटना, एक राजकीय आदेश, एक दान, एक सम्राट की उपलब्धियों, राजवंशीय उत्तराधिकार और कालक्रम, आदि को दर्ज करने की कोई प्रवृत्ति नहीं थी, जैसा कि हमने इस इकाई में देखा, तो फिर ऐसा क्यों है कि हमें पुरातात्विक साक्ष्य के रूप में पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में शिलालेख मिलते हैं? हम आसानी से समझ सकते हैं, अनुमान लगा सकते हैं और दावा कर सकते हैं कि अभिलेख इतिहास लेखन के विभिन्न तरीकों या 'परंपराओं' में से एक रहे हैं क्योंकि वे अतीत का उल्लेख करते हैं। पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में 'अतीत को उत्कीर्ण करने' की व्यापक घटना इतिहास की गहन समझ प्रदान करने, अतीत की ओर देखने और इतिहास लेखन करने के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत बन गए हैं क्योंकि भारतीय इतिहास का एक बड़ा एवं महत्वपूर्ण भाग इन्हीं स्रोतों से आता है। उदाहरण के लिए, दानात्मक (votive) अभिलेखों के विषय में उस समय के लोगों को नेक, सदाचारी, पवित्र और सराहनीय कार्यों को दर्ज करने की महसूस हुई आवश्यकता। यह एक ऐतिहासिक अवधारणा को रेखांकित करता है। इसलिए अभिलेखों का अधिक ऐतिहासिक महत्व माना गया है। उत्कीर्णकों ने भी वर्तमान को अतीत से जोड़ने का सावधानीपूर्वक विचार कर जानबूझकर पूर्वकालिक अभिलेखों की सतहों को चुना जिसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं समुद्रगुप्त की *प्रयाग-प्रशस्ति* एवं जूनागढ़ का अभिलेख। और हमने थापर की ऐतिहासिक निरंतरता के तर्क एवं बड़े पैमाने पर वर्तमान द्वारा अतीत को अपनाकर वैधता प्रदान करने के विचार का भी परीक्षण किया। ये ऐतिहासिक स्रोत ऐतिहासिक परिवर्तन का भी संकेत देते हैं जैसा कि हमने इनकी भाषा के विकास एवं बदलाव के विषय में देखा।

5.8 शब्दावली

आर्यावर्त : यह शब्दावली प्रमुख सांस्कृतिक समुदाय – आर्यों – से आई है जिस स्थान पर उन्होंने कदम रखा या बस गए। प्राचीन भारतीय लेखन में उल्लिखित यह एक भौगोलिक क्षेत्र है जिसमें गंगा का मैदान और उसके सीमावर्ती क्षेत्र शामिल थे। हालांकि कभी-कभी यह भारतीय महाद्वीप के संपूर्ण उत्तरी भाग को सूचित करता है। कुछ इतिहासकार इसे और भी बड़े क्षेत्र के तौर पर देखते हैं जिसमें उत्तरी और मध्य भारत शामिल हैं जो पश्चिमी समुद्री तट से पूर्वी तट तक फैला हुआ था

धम्म : *धम्म* पाली भाषा का शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ 'धर्म' है। यह एक सैद्धांतिक व्यवस्था थी जिसके बारे में कई लोग मानते हैं कि यह कलिंग युद्ध के बाद अशोक के हृदय परिवर्तन के पश्चात् उसके द्वारा आरंभ, उपदेशित एवं प्रचारित किया गया सिद्धांतों का समूह या सामाजिक दर्शन था। यह अपने आप में एक विचारधारा थी जो बौद्ध धर्म से काफ़ी हद तक प्रभावित थी और बौद्ध धर्म पर आधारित थी

पुराण/पुराण साहित्य : गुप्त और उत्तर-गुप्त कालीन हिंदू ग्रंथों का समूह जिसका रचयिता व्यास को माना गया है। 18 *महापुराण* और अनेक *उपपुराण* (*पुराणों* के पूरक या परिशिष्ट) हैं। विषय-वस्तु की दृष्टि से ये विविधतापूर्ण विश्वकोषीय रचनाएँ हैं जिन्हें कई लोगों ने लिखा है और इनमें अनेक विषय शामिल हैं। उदाहरण के लिए, *अग्नि पुराण* (8वीं-11वीं शताब्दी सी ई) में कई विषय जैसे अनुष्ठान पूजा, ज्योतिष और ब्रह्मांड विज्ञान, राजवंशों की वंशावली, कानून, राजनीति, शिक्षा प्रणाली, वास्तुकला

शैली एवं प्रतिमा विज्ञान, कर प्रणाली, सेना का संगठन एवं युद्ध, युद्ध के सिद्धांत और कारण, युद्ध कला, कूटनीति, सार्वजनिक योजनाओं का निर्माण, जल वितरण के तरीके, पौधे एवं पेड़, औषधि, रत्न विज्ञान, व्याकरण, छंद, काव्य, कृषि एवं खाद्य, भूगोल, मिथिला (बिहार) जैसे तीर्थयात्रा स्थलों का मार्गदर्शन, इत्यादि शामिल हैं

5.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें भाग 5.3

2) देखें भाग 5.4

बोध प्रश्न-2

1) देखें उप-भाग 5.5.1

2) देखें भाग 5.6

5.10 संदर्भ ग्रंथ

मजूमदार, आर. सी. व पुसलकर, ए. डी., (1996) 'सोर्सेस ऑफ़ इंडियन हिस्ट्री', द *वैदिक ऐज* (मुम्बईः भारतीय विद्या भवन).

शर्मा, आर. एस., (2018 [2005]) *इंडियाज़ एंशिएन्ट पास्ट* (नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

सिंह, उपिंदर, (2008) *ए हिस्ट्री ऑफ़ एंशिएन्ट एंड अर्ली मिडिवल इंडियाः फ़्रॉम द स्टोन एज टू द ट्वेल्थ सेंचुरी* (नई दिल्लीः पियर्सन लौंगमैन).

थापर, रोमिला, (2002) *अर्ली इंडियाः फ़्रॉम द ओरिजिन्स टू ए डी 1300* (नई दिल्लीः पेंग्विन).

थापर, रोमिला, (2013) 'अर्ली इन्सक्रिप्शन्स एज़ हिस्टौरिक्ल स्टेटमेंट्स', *द पास्ट बिफ़ोर असः हिस्टौरिकल ट्रेडिशंस ऑफ़ अर्ली नॉर्थ इंडिया* (नई दिल्लीः परमानेंट ब्लैक).

5.11 शैक्षणिक वीडियो

टाइप्स ऑफ़ इंस्क्रिप्शंस
https://www.youtube.com/watch?v=fS3t12YbcFA

इंस्क्रिप्शंस ऐज़ अ सोर्स ऑफ़ इंडियन हिस्ट्री
https://www.youtube.com/watch?v=l59qNlogB6Q

ऐपिग्राफ़ी, इंस्क्रिप्शंस एंड एंशिएंट स्क्रिप्ट्स
https://www.youtube.com/watch?v=YaAzOpAC_9o

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY